वाचनाचार्य—
मुनी श्री धनविजयजी महाराजका उपदेशसें

पदार्थ सुधा सिंधु तरंगका प्रथम वर्ग

# प्रश्नामृत प्रश्नोत्तर तरंग

ग्रंथकी दोयसो पुस्तक
शिरोही तावे गाम देलदर निवाशी
शेठजी चतराजी जबुतमलजी
ने
शाह लल्लुभाइ वल्लभदास
झवेरीवाडा—नीशापोल—अमदावाद
वालोकी मारफत
भव्य जीवोकों भेट कीया.

अमदावाद युनियन मुद्रायंत्रमें मुद्रित हुवा.

प्रसिद्धकर्त्ता लल्लुभाई वल्लभदास नीशापोल अमदावाद
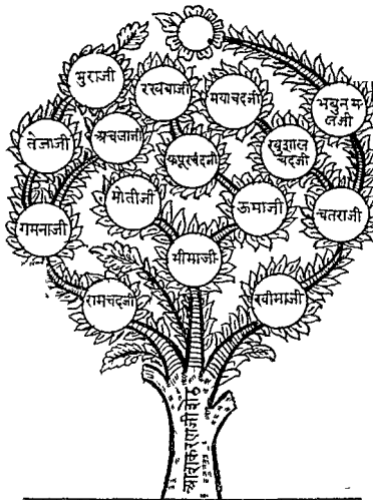
## अर्पण पत्रिका.

### शेठजी चतराजी भबुतमलजी—देलदर.

आप ज्यारे आ पुस्तको धर्मार्थे लोकोनेज अर्पण करशो?
त्यारे हु पण आ पत्रिका आपनेज अर्पण करछु

दुहा.

शिरोही जिल्ले शोभत, मरुधर देश मझार,
देख्युं नजरे देलदर, ज्या जिनमंदिर सार.
आदीजिन उपासको, प्रागवाट प्रख्यात;
आशकरणजी उपता, धन्य मातने तात.
भीमाजी तन तेहना, चतराजी चित चा'व,
खीमाजी खोले गया, भलो धरीने भाव.
चतराजीना चतुर तन, भबुतमलजी शेठ,
प्रौढ पेढि मुंबापुरी, भारत हुंडी पेठ.
वस्तुविजय विरचीत आ, ग्रंथ गण्यो गुणवंत,
भेट कर्यो भवि जीवने, ज्ञान दान खुब खंत.
मरुधरने मुंबापुरी, मेळव्युं मोटु मान;
लल्लु लायक शेठजी, पामो नवे निधान.

ली. आपनो आभारी शाह. लल्लुभाइ धरमचंदास.

## श्री आदीजिन स्तवन

सुख दायक लाल देलदरे देराशर दीपे देवना;
मुल नायक लाल रिषभजिनेश्वर सारे सुरनर सेवनो,
धर्म शांती डावा जमणी, रवी चद्र थकी कांती बमणी,
छे पद्म प्रभु मूरत नमणी ॥ सुख १ ॥
आ कुमारपाल भुपाल तणो, शुभ सतक बारमा चैत्य
बण्यो, छे हेमसुरी उपकार घणो ॥ सुख २ ॥
खेला मडप दृष्टे देखो, दोला लखमा लक्ष्मी लेखो,
ए पून्यवत माणी पेखो ॥ सुख ३ ॥
चोकीनु काम कर्यु प्यारु, धन्य धन्य भूता फतमल
धारु; साथे भातु लीधु सारु ॥ सुख ४ ॥
उभा अरभक कीधो जालो, लादीमां लाभ नलो
न्हाली, कपुरचद रखवा रखवाली ॥ सुख ५ ॥
अच्चल श्रावक सरधा धारी, खुशाल मयाचद श्रय
कारी, छे नवुतमल शोभा न्यारी ॥ सुख ६ ॥
शुभ ज्ञान दान रीती राखो, जर खरची जस लेशो
आखो ? लखशे लल्लु जेवा लाखो !! ॥ सुख ७ ॥

शाह. लल्लुभाइ घल्यमदास.

झवेरीवाडा—नीशापोळ—अमदावाद

# प्रश्नोत्तरतरंगवर्गोपोद्घात वा प्रशस्ति.

पदार्थसुधासिंधुतरंगका पश्नोत्तरतरंग नामा प्रथम वर्ग वनानेका उपोदघात यह है कि, महा राज श्री धनविजयजी इंदोरगावणीसे मासकल्प वदलके, महुगावणी श्री जिनमंदिरजीकी यात्रा करनेकु गए, वहा ऋषि रूपचंदजीका मिलाप हुवा, तव ऋ० रूपचंदजीने कहा कि, मेरे पास जूने पत्रोमें केइ प्रश्न लिखे हुये हैं, तिनका तथा और भी व्यवहारीक प्रश्नोका मेरे दिलमे संदेह हे, वो मेने वहुत जगे पुछा किइ, तथापि मेरे दिलका संदेह गया नही; वास्ते आप कृपा करके में जो जो प्रश्नकी पुछा करु, तिस प्रश्नोका उत्तर देके मेरा दील संतोष करो. तव महाराज साहिवने कहा कि, जिस २ प्रश्नोका तुमारे दिलमे संदेह

है, वो सब लिखके दर्शावोगे तो, पूर्वाचार्योंके वचनानुयायि हमारी बुद्धिमें आवेगा, उन प्रश्नो का उत्तर दिया जायगा वो वांच पक्षपात छोडके दिलमें पूर्वापर विचार करोगे तो, तुमारा दिल संतोषकारक होगा ऐसें उक्त वातचीत होनेसे पट लावद चोमासेमे अपने दिल मुवाफिक प्रश्न लिखवाके रू० रूपचदजीने विनतिपत्र सहित खत लिखवाके श्री राजगढ पर्यूषणा पर्व व्यतित हुये बाद, महाराज श्री धनविजयजीके पास खत भेजा, तीस परवाना या खतकी असल मुताविक नकल इस मुजब है

( श्रीमत स्याद्वाद जैनमार्गके कारभारी साहेब श्री श्री १०८ श्री धनविजयजी महाराजजीके पास परवाना दाखिल होवे, राजगढ जैनपाठशालामे श्रीमत् स्याद्वाद जैनमार्गके धारक महाराज साहेब श्री श्री १०८ श्री श्री रू० रजतचन्द्रजी

महाराजने खत रवाना किया, देश मालवा ग्राम पट्टनपुरसे ॥ ) उक्त खतमे प्रश्न तो प्रश्नोत्तरमे लिखे गये है, और विनंतिपत्र असलके मुताबिक निचे मुवाफिक है.

( श्री सर्वज्ञ वीतरागाय नमः )

॥ श्रीमदादिजिनेश्वरोजयति ॥

॥ दोहा ॥

सिद्ध श्री लोकाग्रपें, तिष्ठत हे सुख रूप ॥
नमोंताहिगुणसमरिके, पाउतदगुणरूप ॥१॥
वृषनचिन्हराजतसुनग, वृषनआदिकरतार ॥
तिनकेक्रमयुगकौंनमु, द्योसंपतसुखकार ॥२॥
आचार्यादिकतीनपद, तपलक्ष्मीकेमूल ॥
तिनप्रसादममहूजियो, ज्ञानलब्धिनरपूर ॥३॥
राजगढनयरेमुनि, तिष्ठेहेंवेढहीमास ॥
श्रीश्रीश्रीवसुविजयकी, व्यापिरहीशुन्नवास ॥४॥
तिनकोंरजतनिशापति, लिखीसोहितमनलाय ॥

नृपनरलोहअवधारीयो, क्यानुष्टिचितलाय ॥५॥
कुशलसलावरतोवहा, सबजनशिष्यसमेत ॥
यहाकुशलवरततसही, अशुभकरमसमहेत ॥६॥
यहव्यवहारप्ररूपणा, लिखिसोहितमितजोग ॥
कुशलतादिनसमजीउ, होयमुक्तिसयोग ॥७॥
पट्टनपुरशुभनगरसें, प्रश्नपत्रिकालेख ॥
पठवईप्रत्युत्तरप्रति, नापैंद्कोंहितदेख ॥८॥
सुखदायकसज्जनपरम घायककुमतिकुगाण ॥
लायकनिरणेकरनके, वसुमुनीयहजाण ॥९॥
पक्षपाततिनकेनहि, जिनआज्ञापरधान ॥
चर्चानिर्णेकरणकुं, दीखतनाहीआन ॥१०॥
तुमसेसज्जनशरलमन, औरनदीसेकोय ॥
चर्चाशरलसुनावविन, मूलननिर्णेहोय ॥११॥
लोकाचारीसज्जनको, सेहेजमेजहोजात ॥
आतमहितकारकशुध्दि, मिलवोकरमीवात ॥१२॥
येचर्चाजोमेलिखी, पक्षपातकबुनाही ॥

यातेशरद्दसुन्नावकरि, समजोगेमनमांही ॥१३॥
केतीचर्चाछ्टपटी, सोन्नीलीखीवचारि ॥
केवलमनकेशल्लकों, मेटनन्नावविचारि ॥१४॥
अवतुमआगमद्यक्तिको, धरिपरयानपरतक्ष ॥
समाधानममप्रश्नकों, करोसोआगमदक्ष ॥१५॥
पेलीश्रीश्रीजिनवचन, गूथेगणधरदेव ॥
तीनपरपाटीसुरमुनि, रचेग्रंथवहुन्नेव ॥१६॥
तिनकेकथितकथनकों, जोनहीमानेमूढ ॥
तोवांकोसमजोहवी, पकरीमूरखरूढ ॥१७॥
पक्षपातराखुंनही, कवहुविसवोएक ॥
जिनशासनकीसत्यता, येहीहीयामेटेक ॥१८॥
सारसाखीजोकथनहे, दृढवाकोसरधान ॥
न्नेकीकेमुखकेवचन, नही समजु परमान ॥१९॥
वादी झगडे वादकरी, हटकी वाधे टेक ॥
खोजीहेरे खोजते, एक पक्षको ठेक ॥२०॥
एकपक्षहटग्रहनते, वसुअधोगतिलीन ॥

है, वो सब लिखके दर्शावोगे तो, पूर्वाचार्योंके वचनानुयायि हमारी बुद्धिमें आवेगा, उन प्रश्नो का उत्तर दिया जायगा वो वांच पक्षपात छोडके दिलमें पूर्वापर विचार करोगे तो, तुमारा दिल संतोषकारक होगा ऐसें उक्त बातचीत होनेसे पट लावद चोमासेमे अपने दिल मुवाफिक प्रश्न लिखवाके ऋ० रूपचदजीने विनतिपत्र सहित खत लिखवाके श्री राजगढ पर्यूषणा पर्व व्यतित हुये बाद, महाराज श्री धनविजयजीके पास खत भेजा, तीस परवाना या खतकी असल मुताविक नकल इस मुजब है

( श्रीमत स्याद्वाद जैनमार्गके कारभारी साहेब श्री श्री १०८ श्री धनविजयजी महाराजजीके पास परवाना दाखिल होवे, राजगढ जैनपावशालामे श्रीमत् स्याद्वाद जैनमार्गके धारक महाराज साहेव श्री श्री १०८ श्री श्री ऋ० रजतचन्द्रजी

महाराजने खत रवाना किया, देश मालवा ग्राम पट्टनपुरसे ॥ ) उक्त खतमे प्रश्न तो प्रश्नोत्तरमे लिखे गये है, और विनंतिपत्र असलके मुताविक निचे मुवाफिक है.

( श्री सर्वज्ञ वीतरागाय नमः )

॥ श्रीमदादिजिनेश्वरोजयति ॥

॥ दोहा ॥

सिद्ध श्री लोकाग्रपें, तिष्ठत हे सुख रूप ॥
नमोंताहिगुणसमरिके, पावतदगुणरूप ॥१॥
वृषभचिन्हराजतसुभग, वृषभआदिकरतार ॥
तिनकेक्रमयुगकोंनमु, द्योसंपतसुखकार ॥२॥
आचार्यादिकतीनपद, तपलक्ष्मीकेमूल ॥
तिनप्रसादममहूजियो, ज्ञानलब्धिनरपूर ॥३॥
राजगढनयरेमुनि, तिष्टेंहेंवेदहीमास ॥
श्रीश्रीश्रीवसुविजयकी, व्यापिरहीशुभवास ॥४॥
तिनकोंरजतनिशापति, लिखीसोंहितमनलाय ॥

नारदसाचीपक्षग्रही, सर्वजगतजसकीन ॥२१॥
पंचमकेपरनावतें, चलीमनोगतचाल ॥
शास्त्रसाखसरधेनही, केवलहटदरहाल ॥२२॥
सरधाविगडेगुणघट, बधेवधगतिन्यून ॥
फेरससारसमुद्रसो, काढनसमरथकौन ॥२३॥
कोईकुमतिविपन्नके, एकवारहोयनाश ॥
आज्ञाभंगकेपापतें, नवनवभुगतेत्रास ॥२४॥
पत्रलिख्योलघुताकरि, फिरलघुतामनमाय ॥
मनरुचिनिर्णेहोनकी, ओरनमेरेचाय ॥२५॥
साधरमीसगतमिले, तत्वज्ञाननिरधार ॥
जैनीकेयाविधवणे, तोतुरनसमजेसार ॥२६॥
पयपथद्वयपक्षधरि, करेवृथाविपवाद ॥
साचीसरधाधारिवो, एकपंथजिनआद ॥२७॥
चर्चाजिनमतसारकी, जोकोइपूछेआय ॥
तोताकोहितभावते, नीकेदेयवताय ॥२८॥
चर्चाचर्चनकेअरथ, तुरकहाहेकाम ॥

एसीतोहोंणीनही, जोवटीयेयाकेदाम ॥२ए॥
चर्चाछत्तरालिखनकों, वमोहोतउपगार ॥
तीर्थंकरसवदेशमें, बिरहेकोनप्रकार ॥३०॥
कर्मकपायफुनितत्त्वअरु, अरिहंतपदशकजान॥
नाद्रशुक्लत्रयोदशी, बुधवारसुप्रमान ॥३१॥

ये चर्चा जो मे लीखी है, जिनकूं देखके आप कहोगे के, येतो प्रसिद्ध अर्थही है, इनका लिखणेका क्या जरूर था? सो आपका तो येही कहेणा उचित हे, परंतु मे तो मंदबुद्धि लिख्योही. चाहु मेरा मनको सदेह मिट्योही, चाहुं जैसे सी प्यकुं गुरु पढावे, ञर उस मदबुद्धिको अर्थाव बोध नही होय, जदी वो गुरांने वारंवार खेदखिन्न करेइ,तोपण वे दयाल कोमल चित्तसों विन्ने वारंवार अर्थावबोध करावे, पण आलस्य करे नांही, तैसें मे मंदज्ञानीकुं चर्चा प्रश्नको निर्णय करायो ही चाहीए, जो मे मदज्ञानकी लज्जा करी प्रश्न नही करुं

तो, मेरा मनको जम्हाशय्पणो कैसे मीटेई ? ॥

॥ दोहा ॥

पूज्यखजानेज्ञानके, हकखजानचीनाय ॥
दोनोकीमिलीयोग्यता, राजगढकेमाय ॥१॥
प्रश्नहुमीहमनेलिखि, सोनेजीआपकनेह ॥
उत्तररोकम्हनेजना, जोराखोधर्मसनेह ॥२॥

लिपिकृतकुशलपुरनगरनिवासीमहात्मालक्ष्मीचंद्रात्मजमोहनलालेनवंदनापूर्वकअवधारसीजी ॥

॥ श्रीरस्तु ॥

[ इतिः परमोत्कृष्टस्नेहविनयपत्र· ]

उक्त निनती और प्रश्नपत्रिका व्याख्यानके अवसर श्री सघसमक्ष वाचनेसें सब संघ अत्यत हर्षित होके महाराज साहेबसे विनती करी के, स्वामीनाथ! रू० रूपचदजीने ढुढकमतीयोकुसमझाने, या अपने दिलमे समझनेके लिये अति उत्तम प्रश्न किये हे इनोंका उतर सामान्य प्रकारसे

लिखवाके भेजा जायगा, तो अकेले रूपचंदजीके हीज खप आवेगा, पण ओर जीवोंके उपगारी न होगा वास्ते विशेप जिज्ञासु पुरुपोके लिये प्रश्नो त्तरग्रथ वनजावे तो ठीक, ऐसी श्री राजगढके सं घकी अरज सुनके, और कु० रूपचदजीकुं स्याद्वाद तत्वगवेपी अपक्षनिवेसी व्यवहार दृष्टिसें समझ के, युक्त परमधर्म स्नेहदृष्टि स्वपरोपकार बुद्धिसें यह पदार्थसुधासिंधुतरंग अवोध जीवोंकु वोधनेके लिये, नानाग्रंथ तथा पूर्वाचार्य पंचांग न्यायसंम त यह ग्रथ वालनापामें वनाया इस ग्रंथमें वि विधप्रकारके प्रश्नोत्तर पूर्वक पदार्थ सिद्धिके चार वर्ग हे. तामे कु० रूपचंदजीने प्रश्न हुंमी लिखि तिस हुंमीका उत्तर रुप रोकम भेजनेके लिये, प्रश्नोत्तरतरंगनामा प्रथम वर्ग महाराज साहेवने व नाया; तव श्री संघने इंदोर गावणी कु० रूपचं दजीके पास भेजा, तव ग्रंथकुं वांचके अत्यानं

दित हुये, और कदाकि, ग्रंथ अत्युत्तम बन्या है, वास्ते छपवाके प्रसिद्ध करना योग्य है तब राज गढके श्रीसघें तथा कम्नोदके वासी पोरवाम ज्ञा तीय शेठ खेतावरदासके पुत्र शेठ छदयचदजीने श्री सघकु अरज करीके यह प्रथम वर्ग छपके प्र सिद्ध हो जावे, तो अपने लोकोंकें सबके उपगा री हो जावे, अरू औरभी जेनधर्मरसिक पुरुष जो इस ग्रथकुं लेने वाचनेंमें रसिक होगे, तो वा कींके वर्ग अत्युत्तम चमत्कारिक पदार्थ निर्णयो केंभी छप जायगे, तो बहुत बालजीवोंके उपगा रिक होगा औसा श्री सघका विचारके साथ यह पदार्थसुधासिंधुतरंगका प्रथम वर्ग छपवाके प्रसि द्ध किया सो सज्जन पुरुष वाचके हमारे ऊपर उपगार करके इस वर्गमे कोइ प्रमाद योगसे जिन वचन पूर्वाचार्य सम्मती न्यायसे विरुद्ध भासन होय, वो हमारेकु लिखके जणावेंगे, तो महारा

न साहेबसें अरज करकें उसका खुलासा समा
धान पूर्वक दूसरा वर्गमे लिखा जायगा. तथा और
नी कोइ प्रश्नका निर्णयकी सज्जनोकों चाहना
होय तो, वो प्रश्न लिखके नेजेंगे, तो वो प्रश्ननी
समाधान पूर्वक दाखल किया जायगा और इस
प्रथम वर्गको वांचते कोइ गेर कठिण वचनका
नासन होय तो वो वचन कुल ऋ० रूपचद्रजीके
आश्री तथा और सत्याक्षरसापेक्षीके आश्री न
ही समजना लेकिन जैसा प्रश्न तैसा अनुवाद
वचन समजके परम मैत्रीनावनासे जो नव्य प्रा
णी वाचेगे, वो अत्युत्तम प्रश्नोत्तर तत्त्वभावतरंग
कुं प्राप्त होके, अत्युत्तम मंगल पद वरेंगे

॥ श्री अर्हनमः ॥

## पदार्थसुधासिंधुतरंग ग्रंथे प्रश्नोत्तरतरंग नामा प्रथम वर्गः प्रारभः

सिरि उसहसेण पहु, वा–रिसेण सिरि वद्ध
माण जिणनाह ॥ चदाणण जिण सवे वि नवह

रा होहमहतुप्रे ॥ १ ॥ स्वर्भूमेर्मातृगर्भे गम
ङदयमहो यः सुरैर्मेरुशैलो रिसकस्तातानयेगा ङप
चयमनिश गायया क्रांत विश्व ॥ पादोपातावनम्र
त्रिभुवन जनता स्वीकृतोच्चै फलार्द्धि, श्री वीरो
व्याधिचित्राविकतरवरद कल्पशाखीनवीन ॥२॥
नत्वा कल्पोपमवीर, स्वस्ति श्री वरदायक ॥ प्र
श्नोत्तरतरंगोय, कुर्वेह बालभाषया ॥३॥

॥ अथोदतभाषया ग्रथ प्रारम्भः ॥

प्रश्न –॥१॥ महावीरस्वामीकु तो मूलनाय
ककरी उच्चस्थान स्थापित करणा, अरु औरको
न्यून स्थान स्थापित करणा, तो आशातनादि
दोषका कारण हे के नहीं ? क्योंकि, तीर्थंकर तो
गुणोकरके सब बराबर हे.

उत्तर –जैनशास्त्रोमें प्रदक्षिणाधिकारमें क
हाहे कि, सर्व कृत्य कल्याणबालक पुरुषने दक्षि
णके पास मूलबिंबकों नमस्कार करके, ज्ञानदर्श
न अरू चारित्र इन तीनोके आराधनार्थे तीन

प्रदक्षिणा देवे, प्रदक्षिणा देता हुवा समवसरण स्थ चार रूप संयुक्त जिनेश्वरजीकों ध्यावे गन्नारे में पूंवे वाम दाहिणा दिशिमें जो विंब होवे तिन को वदे इसी वास्ते सर्व मंदिरमे चारों तरफ ती नविंव स्थापे जाते है. ऐसे करनेसे जो अरिहंत की पीठे वसणमें दोष था सो दूर हो गया पीठ कीसी पासेंजी न रही. इत्यादि युक्तियुक्त जिनमं दिरकुं समवसरणस्थ रूप मानके, ॥ एयाएविहि ए जिणविंव समवसरणे ठविज्जा ॥ इत्यादि पूर्वाचार्यप्रणीत प्रतिष्ठाकल्पादि वचनसें एक तीर्थ करकी प्रतिमाकुं मूलनायक स्थापन करते हैं. इसका मुद्दा यह है कि, समवसरणमें जी एकही तीर्थंकर विराजमान होते है. तैसे जिनमदिरमे जी ग्राम संघादि नामका तीर्थंकर नामसे वर्ग, वैरादि निवर्त्तन करके, नामराशी लेण देण देखके मुजद्दारकी दृष्टि सम जागें मूल सिंघासण तुल्य उच्चस्थानमे मूलनायकजी स्थापित होते हैं. अरु

श्रोर प्रतिमा जी सर्व तीर्थंकर गुणगण सदृश मू
ल नायकजी तुल्य हैं. परतु तीर्थंकर जगवतोंके
जो नामहै, सो एक तो सामान्यार्थ हैं जो सब
तीर्थंकरोंमे पावे श्रोर डुजा विशेषार्थ है, जो एक
ही तीर्थंकरके नामका निमित्तहै "यथा" ॥ रूपती
गञ्चतीपरमपदमितिरूपन्न ॥ जावे जो परमपदकु
सो रूपन' यह अर्थ सब तीर्थंकरोमें व्यापक है ॥
अथ विशेषार्थ ॥ ऊर्वोर्वृषभलाञ्छनमभूज्जगवतोज
नन्याचतुर्दशानास्वप्नानामादौवृषनोदृष्ट. तेनरूष
न ॥ नगवानकी दोनो साथलोंमें बैलका लाञ्छन
था, अथवा जगवतकी माता मरुदेवीने चौदह
स्वप्नकी आदिमे बैलका स्वप्न देखाथा, तिस का
रणसेती रूपन्न ऐसा नाम दीयाथा ऐसे ही सर्व
तीर्थंकरोका प्रथम सामान्यार्थ श्रोर दूसरा विशे
षार्थ श्री आवश्यकादि जैनसिद्धांतोंमे कहा है,
तैसे इहां स्थापनामे जी जिस तीर्थंकरका ना
मसे मूल नायकजीकी सद्भूत स्थापना की

ईगई होय, वोही सामान्य सद्भूत स्थापना
जावसें और पडिमाजी स्थापन कीई जाती
है. तातें मूलनायक सदृश एकही तीर्थंकर
की सब प्रतिमा गिनी जाती है ॥ तथा लां
छनादिक विशेष स्तभाव स्थापनासेंतो मूल
नायक व्यतिरिक्त अन्य अन्य तीर्थंकरकी
भिप्रतिमा गिनी जाती है ॥ तो भी मूलनाय
कजीसें किंचित् भाग न्यून तथा न्यूनतर
वा समभाग स्थानपर स्थापन कीइ जाती है.
तिसका परमार्थ यह है के, सिद्धायतणे पुर
छिमेण दारेण अणुपविस्सई अणुपविसइत्ता
जेणेव देवछंदए जेणेव अठसयजिणपडिमा
ओ तेणेव उवागछई उवागछईत्ता॥इत्यादि जै
न सिद्धांतोंका अभिप्रायसें जिनमंदिरकु श्री
गणधर महाराजने सिद्धायतन अर्थात् सि
द्धघर कहके बतलाया मालुम होताहै॥ तातें

करनेसेंजी सदृश फल प्राप्त होताहै तथा
॥ द्वार बिंब समवसरण बिंबोकी पूजा
जी मूल बिंबकी पूजा करया पीछे, गजारा
सें नीकलती वखत करनी चाहीये. ओसा
संजव है, परंतु प्रवेश करता तो मूल बिंबकी
ही पूजा करणी उचित मालुम होती हैं सं
घाचारजाष्यमें ओसे ही लिखा हे इस वा-
स्ते मूल नायककी पूजा सर्व बिंबोसें पहि
ला और विशेष करनी चाहिये ॥ उक्तमपि
उचियत्त पूआए विसेस करणतु मूल बिंब-
स्स ॥ जपड इतन्न पढम, जणस्स दिठि सह
गमणेण ॥ ११ ॥ शिष्य प्रश्न करता है कि,
चंदनादि करके प्रथम एक मूल नायकको
पूजीयें, अरु दूसरे बिंबोकी पीछे पूजा क-
रनी, यह तो स्वामी सेवक जाव ठहरा, सो
तो लोकनाथ तीर्थंकरके हे नहीं क्योंकि

एक बिंबकी बहुत आदरसें पूजादि कृत्य करणा, और दूसरे बिंबोका थोडा पूजादि कृत्य करणा,यह बडी भारी आशातना मुझको मालुम पडती है ॥ गुरु उत्तर कहते है ॥ अर्हंत प्रतिमाओंमे नायक सेवककी बुद्धि ज्ञानवत पुरुषको नहीं होती है ॥ क्योंकि सर्व प्रतिमाओंके एक सरीखा ही परिवार प्रातिहार्य प्रमुख दीख पडते है यह व्यवहार मात्र है॥ जो बिंब पहीलांही स्थापन कीया गया है, सो मूलनायक है ॥ इस व्यवहारसें शेष प्रतिमाओंका नायक भाव दूर नहीं होता है ॥ एक प्रतिमाकों वंदन करना,पूजा करनी,नैवेद्य चढाना,यह उचित प्रवृत्तिवाले पुरुषकों आशातना नहीं है ॥ जैसें माटीयाचित्रकीप्रतिमाकीपूजा फूलादि रहित उचित है, अरु सुवर्णादिककी प्रति-

माकों स्नान विलेपनादि उचित है, तथा कल्याणक प्रमुखका महोत्सव एकही बिंबका विशेष करके कीया जाता है, परंतु वो महोत्सव दूसरी प्रतिमाओंकी आशातना का कारण नही होता है ॥ जैसें धर्मी पूरुषकों पूजता और लोकोकी आशातना नहीं इसी प्रकारकी उचित प्रवृत्ति करतां जैसें आशातना नहीं होती है, तैसे ही मूल बिंबकी विशेप पूजा तथा उच्चस्थानादि स्थापन करता दोप नही है जिनमदिरमे जिनबिंबकी जो पूजा करते है, सो तीर्थंकरोके वास्ते नही करते है, किंतु अपने शुभभावके निमित्तहै अरू दूसरोकों बोधकी प्राप्ति होतीहै कोई जीवतो श्री जिनमदिरकु देखके प्रतिबोघ होजाता है, अरू कोइ जीव जिनप्रतिमाका प्रशात रूप देखके

प्रतिबोध होजाता है; कोइ पूजाकी महिमा देखके, अरू कोइ गुरु उपदेशसें प्रतिबोध होजाता है. इस वास्ते चैत्य और जिनबिंबकी रचना बहुत सुंदर बनानी चाहीयें. अरू अपणी शक्ति अनुसार मुख्य बिंबकी विशेष अद्भूत शोभा करनी चाहिये. ऊपर लिखनेका तात्पर्य यह है कि, जिनमंदिरके प्रथम प्रवेशमें मूलनायक ही, दृष्टिगोचर होते है, इस लिये श्रीऋषभदेवादि महावीर पर्यंत एक तीर्थंकरकुं श्री जिनमंदिरमे मूल नायकपणे उच्चस्थानपें स्थापित करके, विशेष पूजादि बहुमान करणेमे और प्रतिमाकी आशातनादि दोषका कारण नहीं है. इस प्रश्नका विशेष तर्क वितर्क सहित समाधान श्रीथिरापद्रैकगच्छमंडन वादिवेताल श्रीशास्त्याचार्यकृत महाभाष्यसें जानना. इत्य

लाविस्तरेण ॥ इतिं प्रथम प्रश्नोत्तर संपूर्णम् ॥ १ ॥

प्रश्न —सूत्रोमें अकर्तृम चैत्यालय कहे है, और चैत्यालय २ प्रत्ये ॥ १०८ ॥ जिनप्रतिमा कही ॥ तत्पाठ ॥ अठसय जिणपडिमाण, जिणसेह पमाण मित्ताण सनिखत्ताणं चिठइ ॥ इति वचनात् ॥१०८॥ का क्या प्रमाण न्यूनाधिक क्यों नहीं कही? ॥२॥

उत्तर —अढीद्वीप मध्ये मनुष्यके ॥१०१॥ क्षेत्र है, तिनोंमेसें ३० क्षेत्र अकर्मभूमिके, और ५६ अतरद्वीपके, ये दो मिलके ८६ क्षेत्रोमे युगलीक मनुष्य ऊपजते है वो मनुष्य तीन उद्यम न करे १ असी २ मसी ३ कसी अरू तिनोकी मनोइछितकल्पवृक्ष पूर्ण करे तथा अन्य पन्नर कर्मभूमिके तीन क्षेत्रोमे यह पूर्वोक्त तीन उद्यम है तिस

कारणाते तिनोंको कर्मभूमि कहते है. इन क्षेत्रोंकी भूमिमे तीर्थंकर होते है. तातें बालजीवोंके उपगारके लिये पन्नर क्षेत्रका किंचित् विवरण सहित नाम लिखते है. ॥५॥ भरत ॥५॥ ऐरवत॥५॥ महाविदेह ॥ इन पन्नर क्षेत्रोंमेंसें महाविदेह क्षेत्र मध्ये तीर्थंकर सदाकाल होय है जघन्यसें. वीश ॥२०॥अरू उत्कृष्टसे१६०तथा बाकी॥१०॥ क्षेत्र मध्ये एकेक क्षेत्रमे एक उत्सर्प्पिणी कालहोय. जब चोवीश तीर्थंकर होय. और फेर जब एक अवसर्प्पिणीकाल होय, जब चउवीश तीर्थंकर होय, इस रीतसें सदा काल होते है ॥ अब ये ॥१५॥ क्षेत्र अढी द्वीपमें कोनसा द्वीपमें, कोनसा क्षेत्र है? वो लिखते है प्रथम जंबुद्वीपमें एक दक्षिण भरत ॥१ अरू दुसरा धातकीखंडमें दो

ञरत एक पूर्वञरत १ और दूसरा पश्चिमञरत २ तीसरा पुष्करार्द्धद्वीपमें दो ञरत एक पूर्वञरत १ दूसरा पश्चिम ञरत २ एवं५ ञरत ॥अथ ५ऐरवत॥ प्रथम जंबूद्वीपमे उत्तर दिशामें एक ऐरवत क्षेत्र १ दूसरा घातकीखंममे दो ऐरवत एक पूर्वदिशि १ उसरा पश्चिमदिशि२ तीसरा पुष्करार्द्धद्वीपमे दो ऐरवत क्षेत्र एक पूर्वदिशि १ दूसरा पश्चिमदिशि २ एव पाच ऐरवतक्षेत्र ॥५॥ अव पाच महाविदेह ॥ प्रथम जंबूद्वीपमे एक पूर्व महाविदेह ॥१॥ अरू दूसरा धातकीखममें दो महाविदेह एक पूर्वमहाविदेह १ दूसरा पश्चिम महा विदेह अरू ३ तीसरा पुष्करार्द्धद्वीपमें दो महाविदेह एक पूर्व महाविदेह १ अरू दूसरा पश्चिम महाविदेह २ एव५

महाविदेह इन पंन्नर क्षेत्रोमेसें ५ महावि
देह वर्जित दश क्षेत्रोंमे अतित १ अनागत
२ वर्तमान ३ यह तीन चोवीशी एक एक
क्षेत्रमे होती हे. अरू दश क्षेत्रकी सब मी
लके तीश चोवीशी होती है, इन त्रीकाल
वर्ति तीश चोवीशीमे सातसो वीस अंकतो
पि ७२० तीर्थंकर होते है. तिन ७२० तीर्थं
करोके नाममें ऋषन्न १ चंद्रानन २ वारि
षेण ३ वर्द्धमान ४, ये चार शाश्वत जिन
नामके तीर्थंकर, ऋषन्न १ चद्रानन २ वा-
रिषेण ३ तथा ऋषन्न १ चद्रानन २ वर्द्ध-
मान ३ ये तीन शाश्वत जिननाम दशों क्षे
त्रोंकी त्रीकालवर्त्ति हरेक एक चोवीशीमें
शाश्वत जिननामके तीर्थंकर होते हे॥ जैसें
दक्षिणार्द्ध नरतकी वर्त्तमान चोवीशीमे प्र-
थम तीर्थंकरका नाम ऋषन्नदेव १ अर्थात्

ऋषन्न अष्टम तीर्थंकरका नाम चन्द्रप्रभु अर्था
त् चंद्रानन २ चतुर्विंशतितम तीर्थंकरका ना
म वर्द्धमान ३ ऐसेही अतीत अनागत
वर्त्तमान दश क्षेत्रोंकी तीस चोवीशीमे शा
श्वत जिननामके तीस तरी नेत्र तीर्थंकर
होते है इहां कोइ प्रश्न करेंगे के, अवीकी
उत्सर्प्पिणी अवसर्प्पिणीकालकी तीस चो
वीशीमे तो दक्षिणार्द्ध नरतकी वर्त्तमान
चौवीशी शिवाय शाश्वत जिननामके तीन
तर्थिकरोंके नाम दीखते नहीं है, तो तीस
तरी नेत्रनामके तीर्थंकर कैसे ग्रहण करतेहो?
ताका समाधान यह हैकि, जैसें वर्त्तमान
उत्सर्प्पिणी अवसर्प्पिणीकालकी दश क्षे
त्रोंकी तिस चत्रवीशीमे दक्षिणार्द्ध नरतकी
वर्त्तमान चत्रवीशीमे शाश्वत जिननामके
तीर्थंकर है, तैसे हि पुष्करार्द्ध पश्चिम ऐरव

रते अतीत चउवीशीमें नी डुसरा तीर्थंकर
श्री वृषन्नस्वामी ॥ १ ॥ अर्थात् श्री ऋषन्न
फेर ठठा तीर्थंकर श्री चन्द्रकेतु अर्थात् च
न्द्र सदृश हे अंगका चिन्न जिनका. इस प
र्याय अर्थसे शाश्वत तीर्थंकरका नाम चं
द्रानन २ ग्रहण होता है. अरू पुष्करार्द्ध
द्वीपे पूर्व ऐरवतें वर्त्तमान चोवीशीमें नी
ऐसेंही दशमा तीर्थंकरका नाम श्री चन्द्रके
तु है. तथा धातकीखंमका पश्चिम ऐरवतमें
नी अतीत चोवीशीमें शाश्वत जिननामका
श्री वर्द्धमान तीर्थंकर हुये है. वा धातकीखं
म पश्चिम ऐरवतमें वर्त्तमान चउवीशीमें द-
शमा श्री चंद्रपार्श्व तीर्थंकरनी शाश्वत ना
मसे हुये है इस रीतसें ज्यो अबकी उत्स-
र्प्पिणी अवसर्प्पिणी कालकी त्रीस चोवी
शीमें जंबू नरत ऐरवत धातकीखम पुष्क

राद्धे ऐरवत सबंधी कोई चोवीशीमें तीन३ कोईमे दो२ और कोईमे १ एक शाश्वत जिननामके तीर्थंकर हुये हे तैसें ही अतीत आगामीकालकी उत्सर्पिणी अवसर्पिणीकी तीस चोवीशीमेभी शाश्वत जिननामके तीन तीर्थंकर हुये, अरु होगे, परतु वर्तमान उत्सर्पिणी अवसर्पिणीमे जबूद्वीप सबधी ऐरवत तथा धातकीखम पुष्करार्द्ध सबधी भरतमे शाश्वत जिननामका तीर्थंकरका अभाव देखके व्यामोह न करणा क्योके अनादीकालकी यह स्थिति हेकि, दशों क्षेत्रोंकी तीस चवीशीमे शाश्वत जिननामके तीन तीर्थंकर कोई काल एक क्षेत्रमे अरू कोई काल दूसरे क्षेत्रमे ऐसे अनानुपूर्वीसें सदा सर्वदा काल फिरते होतेहे तिस लिये तीस चोवीशीके नेक अं

कतोपि॥ए०॥ तीर्थंकर ग्रहण कीये जाते है. तथा पंच महाविदेहमे अवस्थित काल है, तातें जघन्यसें वीस ॥२०॥ अरू उत्कृष्टसें एकसो साठ ॥१६०॥ तीर्थंकर सदा सर्वदा काल होय है ॥ तिस लिये जंबूद्वीपका पूर्वमहाविदेहमें उत्कृष्ट कालमे दो तीर्थंकर शाश्वत जिननामके होय ॥ फेर धातकी खंम पूर्वमहाविदेहमें जघन्य कालकी वीशीमे शाश्वत जिननामके सप्तम तीर्थंकर श्रीऋषभाननजी विद्यमान है, तैसें ही उत्कृष्टकालमें तीन तीर्थंकर शाश्वत जिन नामके होय ॥२॥ और धातकीखंमका पश्चिम महाविदेहमें जैसें जघन्य कालकी वीशीके द्वादशम तीर्थंकर श्री चंद्राननजी शाश्वत जिननामसें विद्यमान है, तैसें उत्कृष्टकालमें नी शाश्वत जिननामके तीन

तीर्थंकर होते है, तथा पुष्करार्द्ध द्वीपके पूर्व महाविदेहमे उत्कृष्टकालमे चार तीर्थंकर शाश्वत जिननामके होय है, तैसें ही पुष्करार्द्ध द्वीपके पश्चिम महाविदेहमें भी उत्कृष्ट कालमे चार तीर्थंकर शाश्वत जिननामके होते है इस रीतसें जघन्य काल उत्कृष्ट कालके पाचुं महाविदेहके अठारा शाश्वत जिननामके तीर्थंकर अरू भरतादि दश क्षेत्रोंकी तीस चोवीशीके तीन तीन शाश्वत जिननामके नेक तीर्थंकर सब मिलके एकसो आठ ॥ १०८ ॥ तीर्थंकर शाश्वत जिननामकेहीज होते है तिस लिये जितने शाश्वत चैत्य है, वो भी शाश्वत जिननामसे सिद्धायतन कहे जाते है, तिस शाश्वत सर्व सिद्धायतनोका प्रति देवछंदेमे ॥अठसय जिणपडिमाण जिणुसेह पमाण

मित्ताणं सन्निंखत्ताण चिठ्ठ ॥ इत्यादि आगम वचनतें ॥ तथा सीरि उसह ॥१॥ वद्धमाणं ॥२॥ चंदाणण ॥३॥ वारिसेण ॥४॥ जिणचंदं ॥ पइनवण पमिमाणं मज्झेअठुत्तरसयंच ॥ १ ॥ इत्यादि जैनशास्त्रों का वचनसे रूषन्न ॥ १ ॥ चंद्रानन ॥ २ ॥ वारिषेण ॥३॥ वर्द्धमान ॥४॥ इन शाश्वत जिननामके पूर्वोक्त एकसो आठ तीर्थंकर सदा सर्वदा काल होते हैं. तिस वास्ते शाश्वत सिद्धायतनोके देवछंद देवछद टीठ पूर्व दिशामें श्री रूषन्नानन आदिकी (२७) सत्तावीस शाश्वत जिननामकी प्रतिमा हैं, और पश्चिम दिशामे श्री चंद्रानन आदिकी (२७) सत्तावीस जिनप्रतिमा शाश्वत जिननामकी हैं. अरू श्री वारिषेण आदिकी(२७)सत्तावीस उत्तर दिशामें शा-

श्वत जिननामकी प्रतिमा है, फेर दक्षिण दिशामे श्रीवर्द्धमान आदिकी(२७)सत्तावीस शाश्वत जिननामकी प्रतिमा है सब चार दिशाके मिलके शाश्वत त्रिलोक्य चैत्योके देवछंदेमे अर्थात् मूल गभारेमे पूर्वोक्त न्या यसें एकसो आठसे न्यूनाधिक जिनप्र· तिमा नहीं है तथा ऊर्द्ध अधोलोकवर्त्ति तीन द्वारके शाश्वत जिन चैत्योके मुख म ण्डप वर्जित् तीन द्वारके तीन चोमुखकी बारा प्रतिमा, अरू पाच सन्नाके पन्नरा चो-मुखकी साठ प्रतिमा और तिर्यक् लोक वर्त्ति चार द्वारके साठ जिनजुवनके मुख मण्डप वर्जित् च्यार २ थूनके चार चोमु-खकी सोला सोला प्रतिमा, तथा कुण्डल द्वीप प्रमुखके तीन द्वारके तीन चोमुखकी बारा(१२)प्रतिमा, एव पूर्वोक्त ऊर्द्धलोककी

मुखमंमप तीनं द्वांर सन्ना सहित (१ ८ ०) एकसो एसी जिनप्रतिमा, अरु सन्ना रहित (१ २ ०)एकसो वीस जिनप्रतिमा, अरू तिर्यक् लोकमें चार द्वारके मुखममप थून सहित(१ २ ४)एकसो चोवीस जिनप्रतिमा, अरू तीन द्वार मुखममप सहित (१ २ ०) एकसो वीस जिन प्रतिमा, येन्नी सब शाश्वत जिन नामकी हीज प्रतिमा है ॥ इति द्वितीय प्रश्नोत्तर संपूर्णम् ॥ २ ॥

---

–जगत्रके विषे जो जो वस्तु हे, सो अनंत नय अनत निक्षेपे करी जाणना. इतना ज्ञानकी शक्ति नही होय तो ॥ "ज क्षेयं ज जाणिज्जा" इत्यादि पाठसें च्यार निक्षेपा तो अवश्य ही मानना तो तीन निक्षेपातो सन्नवे, परतु न्नाव निक्षेपा केसे सं-

नवे ? क्योंके नावतो अपणा ही क्रियां
सिद्ध होय उसमे भाव निक्षेपा केसे
मानना ? ॥ ३ ॥

उत्तर–नाम, स्थापना अरु द्रव्य, ये तीन निक्षेप
एक नाव निक्षेपा विना अशुद्ध हे ताते
जैसें सब वस्तुमे तीन निक्षेपा संनव हे
तैसें ही सब वस्तुमे नाव निक्षेपा नी सं-
नवे हे कैसें के जितनी नामकी वस्तु हे
वो सब अपणा २ नाव लिया हि हे परंतु
परनाव लीया नही हे ॥ ताका किंचित्
सरूप लिखते हे कि, नाम निक्षेप वा-
च्य वाचक नाव संबंध सें हें अरु स्थाप-
ना निक्षेप कृति संबधसें नाव संबंध हे–त-
था द्रव्य निक्षेप समवाय संबंध हे ॥ पुन
र्नाव निक्षेप साक्षात्गुणावह हे ॥ इन
चार निक्षेपका स्वरूप श्री अनुयोगद्वार

सूत्रका पावसें कहेहे ॥ गाथा ॥ "जह्वयं जं जाणिङ्गा, निस्केव निरकेवे निरविसेसं ॥ जत्र यनो जाणिङ्गा चजक्कयं निस्केवे तत्र" ॥१॥ नावार्थ. ॥ हे शिष्य! जो तेरेमें अधिक ज्ञान होय तो, एकेक वस्तुके विषे अनेक प्रकारसें निक्षेपाका अवतार करजे. अरू तैसा अधिक ज्ञान न होय, तो नी जिस वस्तुका जो नाम पडा, तिसमे चार निक्षेपातो जरूर अवतार करजे ॥ १ ॥ तहा आकार तथा गुण रहित वस्तुके विषे जब जैसा नाम वर्ते, तब तैसा नाम करके बतलावे. जैसे एक लकडीका कटका लेके कोइकने तिसका जीव ऐसा नाम कहा, वो नाम जीव जाणणा, यथा काली दोरीके ऊपर सापकी बुद्धि करके घाव करे तो, तिसकु साप मारनेकी हिंसा लगे.

ए नाम साप हुवा ॥ इसहीज रीतसें नाम
तप तथा नाम सिद्ध जो वड प्रमुखकुं
सिद्धवड कहके बतलाना, वो नाम निक्षे
पा कहावे ॥१॥ अरु जो कोइ वस्तुमे को
ईक वस्तुका आकारकु देखके, उसकुं वो
वस्तु कहणा, वो स्थापना निक्षेपा कहावे,
जैसें चित्राम अथवा काष्ट पाषाणमे जिनादि
मुर्त्तिका तथा घोडा हाथीका आकार हे, ताते
वो घोडा हाथी कहलाते हैं सो स्थापना नि
क्षेपसें कहलाते हैं यह स्थापना निक्षेप
नाम निक्षेपा सहित होय यथा स्थापन
सिद्ध जिनप्रतिमा प्रमुख, वो सद्भाव स्था
पना पण होय और असद्भाव स्थापना पण
होय और अकर्तृम जिनप्रतिमा तो नंदी
श्वर द्वीप प्रमुखके विषें, अरु इहाकी जिन
प्रतिमा वो कर्तृम ॥ यह सब स्थापन

जाणनी, यह स्थापना निक्षेपा इतर तथा यावत्कथिक दो भेदसे सिद्धांतोमे कहा है ॥२॥ तथा "अणुवउगोदव्वं" ॥ इति अनु योगद्वार वचनात् ॥ जिसका नाम पण होय, अरू आकार स्थापना गुण लक्षण पण होय, पण आत्मोपयोग रहित ॥ तथा भावका कारणकुं द्रव्य निक्षेपा कहणा ॥ ॥३॥ पुन॰॥ "उवउगोभावं"॥ इति वचनात् नाम तथा आकार लक्षण गुण सहित वस्तु होय, उसकु भाव निक्षेपा जाणणा॥४॥ यह चार निक्षेपाका अवतार श्री विशेषा वश्यक भाष्यादिकमें इस रीतसें करा है तत्पाठ॰॥ "नाम जिणा जिण नामा, ठवण जिणा पुण जिणद पडिमाउ ॥ दव्व जिणा जिण जीवा, भाव जिणा समवसरणछा" ॥ ॥१॥ प्रथम नाम जिन जो जिनेश्वरका नाम

कपनादि अरू जिनेश्वरकी मूर्त्ति प्रमुख प्रति
मा थापणी वो सद्भावस्थापना, तथा जिन
ऐसा अक्षर लिखणा सो असद्भाव स्थापना
तथा जिनेश्वरका जीव पूर्वे तीसरा नवमें ए-
काग्र चित्त करके एक पद आराधन करे,
अथवा वीश स्थानक पद आराधे, तब एसी
नावना नावे के, सब जगतका जीवोकुं
शासनका रसिया करके धर्म प्राप्तकर कर्म
सें मुक्त करुं अरू सब जीवोकुं सुखिया करके
मोक्षनगर प्राप्त करु ऐसा प्रकारकी उत्तम
नावना नायके, श्रेणिकादि प्रमुखने जिन
नाम कर्म पुण्य उपार्जन करा, वो नव्य श-
रीरका द्रव्यसे लेकर, जहा तक केवलज्ञान
नहीं उपार्जन करा होय वहां तक छद्मस्था-
वस्थामें तद्व्यतिरिक्त शरीरका द्रव्य जा
णणा तथा श्री जिन अरिहंत मोक्ष गये

पीछे तिनका, शरीरकी भक्ति इंद्रादिक देवता तथा मनुष्य करे है, वो ज्ञशरीरका द्रव्य जाणणा ऐसी रीतसें भव्य शरीर तद्व्यतिरिक्त शरीर अरू ज्ञशरीर ऐसे तीन प्रकारसें तीजा द्रव्य निक्षेपा जाणणा ३॥ अब चोथा भाव निक्षेपा जो श्री जिन अरिहत केवलज्ञान उपजे पीछे, त्रिगडेमें बैठ के बारा प्रर्षदामे देशना दे, तिनकुं भाव जिन कहेणा ४॥ तथा कोईका साधु ऐसा नाम हे,वो नाम साधु और साधुकी मूर्त्तिकी स्थापना करे, वो स्थापना साधु अरू पंच महाव्रत पाले और क्रिया अनुष्ठान करे,शुद्ध आहार लेवे पण ज्ञान ध्यानका जैसा उपयोग चाहिए,तैसा उपयोग न होय,वो द्रव्य साधु अने जो भाव संवर मोक्षका साधक होके भाव साधुकी करणी करे, उनकु भाव

निक्षेपे साधु कहणा ॥ ४ ॥ तथा कोई भी
मुर्त्तमान वस्तुकु रूपनादि जिनका नाम लेके
बतलाना, वो नाम निक्षेपे नाम जिनप्रतिमा
॥१॥ और अव्यक्त वस्तु स्वरूपसें व्यक्तरुप
प्रगट होय, तहा तक स्थापना निक्षेपे स्थाप
ना जिनप्रतिमा २॥ अरू जहा तक अव्यक्त
अरू व्यक्त स्वरूप अजनशिलाका सहित
समवसरणस्थ न हुवा, तहा तक द्रव्य नि
क्षेपे द्रव्य जिनप्रतिमा तथा अजनशिलाका
होके, जिनमदिरमे समवसरणस्थ प्रतिष्ठित
किये, वो भाव निक्षेपे भाव जिनप्रतिमा॥४॥
यह स्थापना जिनमे चार निक्षेपा स्थापन
करे, इस रीतसें सब वस्तुका चार निक्षेप
करणा इहा जिन तथा साधु शब्दका भाव
निक्षेपा अपणा २ भाव लिया सिद्ध है,
तैसे और वस्तुमें भी अपणा २ भाव लियां

भाव निक्षेप सिद्ध है, ऐसा मानना ॥ इति तृतीय प्रश्नोत्तरं सपूर्णम् ॥ ४ ॥

---

प्रश्न –चतुर्थ गुणस्थानवर्ति तीर्थंकर होय, जिस समयमे पंचम गुणस्थानवर्त्ति श्रावक उनकुं प्रत्यक्ष नमस्कार करणा योग्य हे के नही? अरु योग्य हे तो, पूर्व किसने किया? सो पचागीकी साखसे कहणा॥४॥

उत्तर–जैनग्रंथोमे नमस्कार पाच प्रकारके कहे है. १ मत्सर, २ भय, ३ स्नेह, ४ प्रभुता, ५ भक्ति इन पाच नमस्कारोंमेंसे प्रथमके चार नमस्कार तो, सम्यक्दृष्टि मिथ्यादृष्टि दोनुं के प्राये ससार हेतुसें परस्पर करना संभवे अरु स्नेह, प्रभुता ने भक्ति, यह तीन नमस्कार प्रायें सम्यक्दृष्टिकुं धर्म हेतुसे हीज करना सभवे. तिनमे पंचम वंदन

प्रत्यथी नक्ति नमस्कार तो सर्वविरति प्र-
मुखकुं हीज सन्नवे अरू प्रणाम प्रत्य
यी नक्ति नमस्कार देशविरती अविरती
पचम चतुर्थ गुणस्थानवर्त्तिकु परस्पर क-
रना संनवे, तो चतुर्थ गुणस्थानवर्त्ति ती
र्थंकर महाराजकुं तो सनव मान होय ही
ज क्योंकि मिथ्यात्व गुण सहित प्रथम गु-
णस्थानमे वर्त्तनेवाले राजादिकको इह लोक
प्रयोजनके अर्थे देशविरति श्रावक लो
क नमस्कार करते हैं, तो तीर्थंकर चक्रवर्ति
कु इह लोकार्थं नमस्कार करे, इसमे तो क्या
आश्चर्य है? परतु चतुर्थ गुणस्थानवर्त्ति ती-
र्थंकर महाराज देशविरति श्रावकोंको पर-
लोकार्थंनी नमस्कार करने योग्य है कारण
के श्री आवश्यकादि जैन आगमोंमें (नरहो
सावगोजाउ) इति वचनात् अर्थात् श्री नरत

चक्रवर्ति (श्रावक) अवस्थामे मरीचीकुं कहाके, में तेरे त्रीदंमी परिव्राज्य न्नेपकु नही वंदन करता हुं, परंतु (अर्हन् भावीति वंद्यसे) अर्थात् भावी तीर्थंकर तुं होने वाला हे, तातें में तेरेकुं वदन करता हुं ऐसा कहकें तिन प्रदक्षिणा देके मरीचीकुं वंदन करा तो अब विचार करना चाहिये के, तिसे भावी द्रव्य निक्षेपे रहा हुवा तीर्थंकरका जीव (मरीचीकु) भरतचक्रवर्त्तिने वंदन करा तो आविर्भाव द्रव्य निक्षेपे रहा हुवा, अर्थात् तन्नव भाव निक्षेपे वर्तनेवाला ऐसा द्रव्य निक्षेपे रहे हुये संसार अवस्थामे चतुर्थ गुणस्थानवर्त्ति तीर्थंकर श्रावकोंकुं नमस्कार करणे योग्यही है, परतु किसने नमस्कार किया? ऐसा स्वामीतो हमारी दृष्टि गोचरमे जैनसिद्धातोंकी पंचागी आइ, उनमे तो

देखनेमे आया नहीं, पण प्रथमानुयोगमे
गधारादि श्रावकोने श्रीमहाविदेहादि क्षे-
त्रोमे नङ्करादि तिर्थकरोकु वंदन करा
सुणी जता है सो प्रथमानुयोगजी जैन
सिध्दात पचागीके वाहार नही है अर्थात्
पचागीमेही है ॥ तथाचोक्त श्रीसमवायाग
नदीसूत्रे ॥ "से किंत अणुञगो अणुञगे २
डविहे पन्नत्ते तजहा ॥ मुलपढमाणु ञगेय
गमियाणु ञगेय" अर्थ ॥द्वादशमाग दृष्टिवाद
का पाच भेद है एक परिकर्म १, दूसरा सूत्र
२,तृतीय पूर्वानुगत ३, चतुर्थ अनुयोग ४, अरु
पचम चूलिका ५ ॥ तिस्मे चतुर्थ अनुयोग
वो डविहे पन्नत्ते के० दो प्रकारका है तिनमे
मूल प्रथमानुयोगमे वहोत वातो सूत्रकारने
लिखी है वो लिखता ग्रथ वहोत वधे, ताके
लिये नहि लिखते है पर दृष्टिवादका चतुर्थ

नेद जो प्रथमानुयोगमेंसें पूर्वधरादि पूर्वा चार्योंने चरित्रादिक करे हे, वो प्रथमानुयोग कहे जाते हे.तातें पंचागीमाचि हे, तिस लिये प्रथमानुयोगमे वहुत श्रावकोने गृहस्था वस्थामे वर्त्तते तीर्थकरोकुं नमस्कार किये हे और संसार अवस्थामे रहे हुये, तीर्थकरों कुं जैनसिद्धांतोमें दमीसर कहके गणधर महाराजने वतलाये है तिस वास्ते पंचम गुणस्थानवर्त्ति श्रावकोकुं चतुर्थ गुणस्थान वर्त्ति तीर्थंकर होय, तिस समयमे नमस्कार करना योग्यही हे इति चतुर्थ प्रश्नोतरं संपूर्णम् ॥ ४ ॥

---

प्रश्न.—वर्त्तमानकालमे श्रावक जिनेंद्र देवकी पूजन सचित्त द्रव्यसें करते हे, और सूत्रोमें तो ऐसा लिखा हे के, जिस वखत श्रावक सम

वसरणमे गए उस वखत सचित्त द्रव्यकु वाहार मेलके गए यरपाठ. ॥ "सचिताण दव्वाणं विउसरणया, अचिताणदव्वाण अवि उसरणया" ॥ इतादिज्ञेयं ॥५॥

उत्तर–श्री उपपात्तिक तथा आवश्यकादि जैन सिद्धातोमे ऐसा पाठ हे के, "अप्पेगइया वंदणवत्तियाए, अप्पेगइया पूअणवत्तिआए ॥ तथा ॥ वदणवत्तिआए, पूअणत्तिआए इत्यादि" ॥ व्याख्या ॥ वंदन प्रत्यय वंदनार्थ मित्यर्थ पूजनं गंध माल्यादिना पूजनार्थमित्यर्थ ॥ भावार्थ ॥ चपानगरीके उग्रकुलादिक कितनेक सम्यकृद्दष्टि श्रावक लोक कितनेक तो वदन स्तुति करणेके लिये आवे, अरू कितनेक पुष्पादिकसें पूजनके निमित्त आवे, तैसे ही आवश्यकमे भी वंदनप्रत्ययं अर्थात् प्रशस्त मन वचन

अरू कायाकी' प्रवृत्ति त्रिधा शुद्धिसें प्रणा
मका करणा, अने पूजन प्रत्यय सो गंध
कपूर, कस्तूरी, फल, फूल, चदनादिकसें
पूजनका करणा. इत्यादिक सूत्र वृत्तिके अ-
निप्रायसे समवसरणमेंजी नाव जिनें-
द्रदेवकी अग्रपूजा पण पूर्वकालमे सचित्त
द्रव्यसें श्रावकोंने करी हुई संनवमान हे.
तो वर्त्तमानकालमें तो स्थापना जिने-
द्रकी पूजा श्रावक सचित्त द्रव्यसे करे, इ-
समे हरजा नही हे क्यो के, जीवानिगम
नगवती प्रमुख वहोत सिद्धांतोमे स्थापना
जिनेंद्रकी पूजन सचित्त द्रव्यसें देवादिकों
ने करी हुइ लिखी है, तैसे ही श्रावक कर-
णीमे नी ज्ञाताजी प्रमुखमे द्रौपदी प्रमुख
पूजा विधि स्पष्ट हे, तैसे तिनोका प्रसादादि
कृत्यनी श्रुतार्थापत्तिसें सिद्ध हे. तथा वि

विवाद स्पष्टाक्षर " श्री महानिशीथ सूत्र तृतीयाध्ययन मध्ये हैं वो लिखते है॥ (अकसिणपवत्तगाणं, विरयाविरयाण एस खलुजुत्तो॥ जेकसिण सजम विउ पुप्फाइय नकप्पए ॥ १ ॥ तेसिकिमन्ने गोयमा एस वत्तिसिदाणुठिए जम्हा तम्हा उभय अणुठे जा वभुझमी विणउगमेव तेसि भाव उवा सभवो तहा भावच्चणाइ उत्तम दसन्न. भदेण उदाहरण तहेव चक्कहर भाणु ससिदत्तम गादी ही पुछ ते विण दिसेगो तावजं सूरिदेहि ऊत्तीउ सविद्धीए अण्ण सामण पूआ सक्कारे कए ताजइ एव तउ वुज्झ गोयमा णीससय देसविरय आविरयाणतु विणुउग मुभयह विवणायं) ॥ इस पाठमे चतुर्थ तथा पचम गुणगणे नि संशय द्रव्यस्तव भावस्तव उभय करनेका

कहा, तथा सत्रैथ द्रव्यस्तव फल भी दि-
खाया है (कात्रण जिणायणेहि मह्यिं
सयल मेयणी वट्टं दाणाइचउक्केवणवि
सड्ढो विगच्छिज्ज अच्चुयं) ॥१॥ गुण स्था-
नक मुजब भक्ति यतना परिणाममें जल
पुष्पादि सचित्त संघट्ट विराधनका दोष
वह नही है प्रत्युत गुणावह है नही तो
अभिगमन वदनादि विधि पण उछिन्न
भाव प्राप्त होय तथा उश्न जलादिकसे स्नात्र
अर्थात् नवण हीर तथा कागजके फूल
प्रमुखसे पूजन अथवा स्तोक जल पुष्पा
दिकसें पूजा भक्ति स्थानमें अविभक्त
परिणाम वढानेसे वोधवीजका नाश करे.
उक्तच पचाशके ॥ (अणडारंभवेज्जं धम्मे-
णारंभउ अणाभोगो लोएवपवयण खिसा
अवोहि वीयति दोसाय ॥१॥) जो साधुकु

असत्कार असन्मान करके शुद्ध अथवा अशुद्ध देनेसे एकात पापबध कहा है तो भक्ति परिणाम वचनासें स्तोक पुष्पादि पूजा तथा सचित्त सकित पुरुषोंका बोध बीजका नाश क्यों न होय? कारणके,बलिढौकन पुष्प पूजा सत्तरन्नेदादि अनेक विधि सूत्रमे था, वो ही वर्त्तमान परपरामे वर्ते है उक्तच श्री महानिशीथे ॥ (सत्तुमहया विह्वरेण अरिहत चरियानि हाणे अतगम दसाए अझयणे कसिण वन्नेय) ॥ इत्यादि सिद्धात पूर्वे था वर्त्तमानमे नही हे, तो नी भिन्न पट्ट सधन न्यायसे श्री देवर्द्धिगणी वाचनानुगत पचागी शुद्ध अवलबन करता कोई प्रकारकी न्यूनता नही है तथा कोइ बात सिद्धातमे स्तोक कही होय, अरू कोइ विशेप कही होय, तहा सदेह न करना क्यों

के सिद्धांत शैली ऐसे ही हे. उक्तंच ॥ (कत्त इदेसग्गहणं कन्नइ खिप्पंति निराविसेसाइ उक्कमवइकमाइ सहावस उणि रित्ताइ)॥ ऐसें सिद्धांत न्याय प्रवृत्तिसें पूर्वकालमें श्रावक लोक जिनेंद्रदेवकी पूजा सचित्त द्रव्यसें कर्त्ते, तैसें वर्त्तमानमे न्नी कर्त्ते हे॥ अरू पंच अन्निगम साचवतां श्रावक जन सचित्त द्रव्यका त्याग करके समवसरण तथा गुरु अवग्रहमें प्रवेश करते हे. सो, अपने शरीर संवंधी सचित्त न्नोग उपन्नोग वस्तुका त्याग करते हे.परं देव गुरु न्नक्ति संवंधी सचित्तादि द्रव्यका त्याग नही करते हे. इत्यलं विस्तरेण ॥इति पंचम प्रश्नोत्तर संपूर्णम्॥५॥

---

प्रश्नः—वहुरि उत्तराध्ययन सूत्रमे एसा लिखा हे के॥ (पुत्रिउण मएतुझं झाण विग्घोउ जो

कन्॥ निमतियाए न्नोगेहि तसवसरिसेहमे)
यहां तो आमत्रण वर्जित करी, तव अक
ल्पित वस्तुको सघट्टो केसे संभवे? ॥६॥
त्तर –इस प्रश्नका चरितार्थ इस तरेसें हे के,
श्री उत्तराध्ययनमे जो पुछिऊण गाथा क
हीहे सो अन्य तवधकीहे तथाचतद्व्याख्या॥
हेमहर्षे मयातुज्ञ एष्टाप्रश्नरुत्वा यस्तवध्य
न विघ्न रुत चपुनर्न्नोगे रुत्वानि मंत्रितो
न्नोस्वामिन् न्नोगानभुक्ष्व इत्यादि तवप्रार्थन
रुतातसर्वं ममापराध क्षमस्वेत्यर्थ ॥ ५७॥
इस व्याख्यामे यह आशय हे कि अनाथि
महर्षिकु श्रेणिक राजा अपना अपराध
क्षमापन करणेकु विज्ञापना करता है कि,
हे महर्षि मेने तुमको प्रश्न करिके ध्यानका
जो विघ्न किया और न्नोगकी निमंत्रणा
• अर्थात् प्रार्थना किइ के हे स्वामीन् न्नोग जो

तिनोप्रति भुजन करो. इत्यादि कथन रूप मेरा अपराध क्षमापना योग्य ही वास्ते सब मेरा अपराध क्षमा करो ऐसे कहके श्रेणि कराजाने अपना अपराध क्षमापन करा, पण आमंत्रण वर्जन करी ऐसा इस गाथामे आसय नही हे तोनी आमंत्रण वर्जित करी, ऐसा कोइका थंचितसनवसें स्व आत्माजिलाप नोगकी आमत्रण वर्जित है परं गुरु भक्ति ग्लानादि उपचार संबधी आमत्रण वर्जित करी नही है तैसे अकल्पित वस्तुका संघट्ट नी साधु उत्सर्ग मार्गमें नही करे, पण अपवाद मार्गमे मार्ग ग्लानादि कारणे अकल्पनीय वस्तुका संघट्ट आचारागादि जैन सिद्धातोमे प्रगट कहा ही है तिनोंका पाठ ग्रथ गौरवके नयसें नही लिखे है.तथा स्थापना जिनेंद्रकी

पूजामे पुष्पादि संघट्ट अभिप्रायसे यह प्रश्न
होय, तब तो अकल्पनीय वस्तुका संघट्टकी
आशका करके प्रश्न करणा ही व्यर्थ हे क्यों
के कल्पनीय अकल्पनीय वस्तुकी आशं
काती कल्पवर्त्तिमे रही हे अरू जिनेंद्रदेवकी
अवस्था तो कल्पातीत हे, तो तिनोंके अ
श्री कल्पनीय अरू अकल्पनीय वस्तुक
सघट्टकी कल्पना करनी असन्नवित हे का
रणके श्री आवश्यकादि सिद्धांतोमे वग्गु
रादि श्रावकोने छद्मस्थ अवस्थामें विद्य
मान तीर्थंकरकी पूजा पुष्पादिकसे करी
वहां नी सघट्ट दोप प्रतिपादन नही किया
तो स्थापना जिनेंद्रकु तो पुष्पादि पूजाक
कल्प ही हे जेसें साधु साध्वीकु स्त्री पुरुषक
सघट्ट अकल्पनीय हे, पण गुरु गुरुणिके
चित्रादि मूर्त्ति स्थापनाकुं साधु साध्वी पु

रुप स्त्री गुर्वादि नक्तिके अर्थे संघट करे तो
तिनका संघट्ट दोष जैन सिध्धांतोमे कहां
नी प्रतिपादन करा नही हे, प्रत्युत गुणा
वह कहा हे तथा साधुने सचित्त जल संघट्ट
नेका त्याग करा हे,पण धर्म प्रवृत्तिके लिये
विहारके अवसर नदी प्रमुख उतरते स-
चित्त जलादिकका संघट्टसें उनका चारि-
त्रमे दोष नही लगता हे अरू साधु सर्व
त्यागी हे, तो नी काल करे पीछे साधुके
शरीरकुं सचित्त जलादिकसें स्नानादि करा
के पूर्वकालमेंनी जंबूद्वीपपन्नत्त्यादिक सू-
त्रोमे इंद्रादिक श्रावकोने करी, ने वर्त्तमान
मे नी सब मतके नक्त लोक सचित्त अ-
ग्नीमे संस्कारादि करते हे, पण त्यागीकुं
नोगी होनेकी तथा संघट्टकी कल्पना नही
करते हे. तो, आविर्नावसें तिरोनावी

स्थापना जिनेंद्रकी जल पुष्पादि पूजामें सघट्टकी आशका तथा त्यागी भोगादि कल्पना करते है, वो महामूर्ख शिरोमणी है. परं विद्वताकी उपमा योग्य नहीं है इत्यल म् ॥ इति षष्ठम प्रश्नोत्तरं सपूर्णम् ॥

---

प्रश्न.—जिनप्रतिमाकी पूजन भव्य जन करते है, सो निश्चयमे मोक्षका कारज है? के कारण है? ॥ ६ ॥

उत्तर —जिनप्रतिमाकी पूजन कारणे कार्यो पचारात् इस वचनसे कारणमे कार्यका उपचार तो निश्चयमे जिनप्रतिमाकी पूजन मोक्षका कार्य है-अन्यथा (हियाए सुहाए खमाए निस्सेसाए आणुगामियत्ताए) इत्यादि जैनसिद्धातोमे हित कारी सुखकारी क्षेमकारी मोक्षकारी शुभानुबंध कारी जिनपूजाका फल प्रतिपादन करणेंसें नि

मे जिनपूजा मोक्षका कारण है. ॥ इति सप्तम
ोतरं संपूर्णम् ॥

---

प्रश्न–जिनप्रतिमाकी दो दशा हे. एक तो
राग, दुसरी वीतराग जिसमे शुद्धोपयोगका सा
न कोनसी दशामे हे ? ॥ ८ ॥

उत्तर –शुद्धोपयोगका साधन तो वीतराग
शामे ही है, परंतु जिनप्रतिमाकी वीतराग दशा
ाय दुसरी दशा कोइ जैनशास्त्र सिद्धातोमे
मारे देखनेमे आई नहीं. प्रत्युत जिनप्रतिमाकुं
सिद्ध भगवान ठहराके जिनायतनकु सिद्धाय
न जैन सिद्धातोमे श्री गणधर महाराजने कहा
अन्यथा सिद्धघर कहनेसें गणधर महाराजकुं
ावाद दोषका सम्भव होय, तो जिनप्रतिमा सिद्ध
रूप बलात्कारसे ठहरी. इसी वास्तेहीज जि-
प्रतिमाके आगे शक्रस्तव(णमु त्थुणं) ऐसा

पाठ कह्णोका सिद्धातोंमें गणधर महाराजजी
कहा हे,ने नाव जिनके आगे (ताणं सपावितकाई
ऐसा पाठ कहा हे, तो अब परीक्षकोकु विचार क
रना चाहिये के,पूर्वोक्त सिद्धातोंके अभिप्रायसे जि
नप्रतिमा सिद्ध स्वरूप ठहरी, तो सिद्धावस्था
वीतराग दशा हे, तो जिनप्रतिमामेंभी वीतरा
दशा हीज हे, परंतु सराग दशा नहीं हे जे क
छत्र चामर मुकुटादि विभूती जिनप्रतिमाकी दे
खकें कोइ सराग दशा ठहरावे, तो विद्यमान भग
जिनेंद्रकेभी छत्र चामरादि विभूती तो, समवस
णाधिकारमे जैनसिद्धातोमे प्रसिद्ध हे ने मुकुटा
विभूतीका प्रतिभास ॥ (सिगार कल्लाण सिवध
मगलं अणलंकिय विभुसिया) इत्यादि श्री भ
वती सूत्रका पाठसें सिद्ध हे, तो क्या विद्यमा
भाव तीर्थंकरकी वीतराग दशा बदलके छत्र च
मरादि चिन्होसे सराग दशा हुइ कही जाती है

ही नही वीतरागदशाहीज कही जाती है. जो
दाचित् छत्र चामर मुकुटादि चिन्होसें वीतराग
शा वदले, तव तो भरतादिक गृहस्थ लिगीयोंकु
वलज्ञानकी उत्पत्ती भी न होनी चाहिये ने
ास्त्रोतोमे तो वाह्य भाव अंगीकार करके, गृहस्थ
ंगमे भी केवलज्ञान उत्पत्ति कही हे तातें वाह्य
भूतिसें ज्यों विद्यमान भाव तीर्थकरमे वीतराग
ाका अभाव नही होता है, तेसेंही स्थापना
निंदमे भी वाह्य विभूतिसे सराग दशाका भाव
ही हाता हे. और सराग वीतराग दशा कुछ वाह्य
भूतिमे नही हे, किंतु जीवोका परिणामोमे रही
. जेसे सुंदर मदभर यौवनवती सोळ सिणगार
हित स्वरूपवत स्त्रीकुं देखके सरागी पुरुषोंकों
ाग भाव उत्पन्न होता हे,अरू वीतरागी पुरुषोको
तराग भाव उत्पन्न होता हे, तैसे ही द्रव्य जिन
व जिन तथा स्थापना जिनके दिक्षा महोत्छ-

पाठ कह्योका सिद्धांतोमें गणधर महाराजजीने
कहा हे,ने नाव जिनके आगे (ठाणं सपाविठकार्ई
ऐसा पाठ कहा हे, तो अब परीक्षकोकु विचार क
रना चाहिये के,पूर्वोक्त सिद्धांतोंके अभिप्रायसे जि
नप्रतिमा सिद्ध स्वरूप ठहरी, तो सिद्धावस्था
वीतराग दशा हे, तो जिनप्रतिमामेंनी वीतरा
दशा हीज हे, परंतु सराग दशा नहीं हे जे क
ठत्र चामर मुकुटादि विभूती जिनप्रतिमाकी दे
खकें कोइ सराग दशा ठहरावे, तो विद्यमान ना
जिनेंद्रकेनी छत्र चामरादि विभूती तो, समवस
णाधिकारमे जैनसिद्धांतोमे प्रसिद्ध हे ने मुकुटा
विनूतीका प्रतिनास ॥ (सिगारं कल्लाण सिवंधन
मगल अणलकिय विभूसिया) इत्यादि श्री नग
वती सूत्रका पाठसें सिद्ध हे, तो क्या विद्यमा
नाव तीर्थकरकी वीतराग दशा बदलके छत्र च
मरादि चिन्होसे सराग दशा हुइ कही जाती

ही नहीं वीतरागदशाहीज कही जाती है जो
दाचित् छत्र चामर मुकुटादि चिन्होसें वीतराग
शा बदले, तब तो भरतादिक गृहस्थ लिंगीयोकु
वलज्ञानकी उत्पत्ती नी न होनी चाहिये. ने
स्थातोमे तो बाह्य नाव अंगीकार करके, गृहस्थ
िंगमे नी केवलज्ञान उत्पत्ति कही हे तातें बाह्य
नूतिसें ज्यो विद्यमान नाव तीर्थकरमे वीतराग
शाका अनाव नही होता है, तेसेही स्थापना
नेंद्रमे नी बाह्य विनूतीसें सराग दशाका नाव
ही होता हे. और सराग वीतराग दशा कुछ बाह्य
नूतीमे नही हे, किंतु जीवोका परिणामोमे रहीं
. जैसें सुंदर मदनर योवनवती सोल सिणगार
हित स्वरूपवत स्त्रीकुं देखके सरागी पुरुषोंकों
ाग भाव उत्पन्न होता हे, अरू वीतरागी पुरुषोको
तराग नाव उत्पन्न होता हे, तैसे ही ड्व्य जिन
व जिन तथा स्थापना जिनके दिक्षा महोत्स-

वादि तथा समवसरणादि अवसरे ज्ञत्र चाम
मुकुटादि बाह्य विभूती देखके सरागीकु सराग
जाव होता हे, अरु वीतरागीकुं वीतराग जाव होत
हे, पण स्त्रीकी विभूती देखके सरागीकु अप्रश
स्त सराग जावका फल पापबंधका मिलता
अरू वीतरागकी बाह्य विभूती देखके सरागीकु
शस्त जावका फल पुन्यबंधका मिलता हे अ
वीतरागीकु तो निर्जराका फल हीज मिलता
तिस लिये जीवोके निजजावमे हीज सराग वी
राग दोनु दशा हे, पण बाह्य विभूतीमे सराग वी
राग दशा नही हे तिस वास्ते जिनप्रतिमाकी सर
दशा नही हे वीतराग दशा हीज हे सूक्ष्म धि
विचारणीयम् इति अष्टम प्रश्नोत्तर संपूर्णम् ॥

---

प्रश्न –जिनालय तथा जिनप्रतिमाकी म
वचन कायाये करी अविधि होनेसें कर्मका बंध हो

नव वर्त्तमानकालमें तो वहुत मंदिरोंकी प्रतिष्टा
प्रविधिसें हुइ दीखे हे और मंदिरोंमे क्रिया आ-
चरणभी विपरीत दीसे हे जब दर्शन नमस्कार
स रीतीसें करना?

उत्तर –जिनमंदिर जिनप्रतिमाकी अपनी
क्ति छते जाणके मन वचन कायासें अविधि आ-
ातना करे तो, अशुभकर्मका वंध होय, पण
स्का भाव अविधि टालणेका हे, अरू अ-
क परिहारसें मन वचन कायासें अविधि होणे
अशुभकर्मका वंध नही होता हे. तथा जिन
ंव जिनमंदिरोकी अविधि प्रतिष्टा तथा विप-
ीत क्रिया आचरण वर्त्तमानकालमें देखके अ-
नी शक्ति छते टालणेकी खप करणा, परंतु अ-
िध आदि दोष देखके, जिनविंव जिनमंदिरका
र्शन नमस्कार पूजादि कृत्य बंध नही करणा.
ो कर करे तो, गुरु प्रायश्चित्तका भागी होय तथा

चोक्त (वृहद्भाष्यादौ ॥ अविहिया कया व
असूआवयणं नणतिसमयन्नू पायछित्त अ
गुरुअवि तह कएलहुयं॥१॥) अस्यार्थ ॥ अवि
करणेसें न करणा अच्छा है, ऐसें जो कहते है,
असूया वचन है यह कहने वाला जैन
कों जानता नही क्योंकि जैनशास्त्रके ज्ञाता
ऐसें कहते है कि, जो न करे उसको गुरु प्राय
श्चित्त आता है, अरु जो अविधिसें करे उसक
लघुप्रायश्चित्त आता है इस वास्ते जिनदर्शना
धर्मकृत्य अवश्य करना चाहिये तथा जिनमं
जिनप्रतिमाकी पूजा प्रतिष्ठा प्रमादादि दोष
जाणके अविधिका करनेवाला दुखका भा
होता है परतु जिनमदिर जिनप्रतिमा दूसे
अवदनीय नही होते है तैसे ही कहा है सम
प्रकरण सूत्रमें तथाचतत् ॥ गाथा ॥ (गुरु व
थाइ केइ अन्नेसयकारिआइतविति ॥ वि

कारिआइ अने पडिमाएं पूअण विहाणं ) ॥१॥
व्याख्या ॥ गुरु कहिये माता पिता पड दादा
प्रमुख तिनकी कराइहूइ प्रतिमा पूजनी चाहिये.
कोई अैसें कहते है तथा कोइ कहते है कि, अ-
पनी कराइ प्रतिष्टी हुइ पूजनी चाहिये कोइ
कहते हैं के, विधिसें कराइ प्रतिष्टी प्रतिमा पूजनी
चाहियें. इनमें यथार्थ पक्ष तो यह है कि, ममत्व
रहित सर्व प्रतिमाको विशेष रहित पूजना चाहियें,
क्योंकि सर्व जगे तीर्थंकरका आकार देखनेसें ती-
र्थंकर बुद्धि उत्पन्न होती है जे कर अैसे न मानी
जावे तब जिनबिंबकी अवज्ञासे दूरंत ससारमें भ्र-
मणारूप उसको निश्चय ही दंड होवेगा और अैसा
भी कुविकल्प न करणां कि, जो अविधीसें जिन
मंदिर जिनप्रतिमा बनी है, उसके पूजनेसें तथा
वंदनादि करनेसे अविधिमार्गकी अनुमोदनासें
अर्हतकी आज्ञाभंग रूप दूषण लगता है, तथा

चोक्तं (वृहन्नाप्यादौ ॥ अविहिया कया वर
असूआवयण जणतिसमयन्नू पायछित्त अक
गुरुअवि तह कएलहुयं॥१॥) अस्यार्थ ॥ अवि
करणेसें न करणा अच्छा है, औसें जो कहते है,
असूया वचन है यह कहने वाला जैनसिध्दा
कों जानता नही क्योंकि जैनशास्त्रके ज्ञाता
औसें कहते है कि, जो न करे उसको गुरु प्रा
श्चित्त आता है, अरु जो अविधिसें करे उस
लघुप्रायश्चित्त आता है इस वास्ते जिनदर्शना
धर्मकृत्य अवश्य करना चाहिये तथा जिनम
जिनप्रतिमाकी पूजा प्रतिष्ठा प्रमादादि दो
जाणके अविधिका करनेवाला दुखका न
होता है परंतु जिनमंदिर जिनप्रतिमा दूसं
अवंदनीय नही होते है तैसे ही कहा है सम
प्रकरण सूत्रमें तथाचतत् ॥ गाथा ॥ (गुरु क
आइ केइ अन्नेसयकारिआइतंबिंति ॥ वि

तका लक्षण है, परंतु अविध्यादि दोषका विक-
प करके जिनदर्शनादि त्यागन रूप विकल्पका
गगन करके विधिमार्गकी अन्वेषणा करणी
ह ही तत्व है. इति नवमं प्रश्नोत्तरं संपूर्णम् ॥

---

॥१०॥प्रश्न॥ जैन आगममें चार प्रकारके
न कहे है. पदस्थ ॥१॥ पिंडस्थ ॥२॥ रूपस्थ
॥रूपातीत ॥४॥ जिस्में दूसरा पिंडस्थ ध्यानमे
॥ कहा है के, मुद्रा मूरति छबी चतुराइ, कला
वडवेस बनाइ ॥ रूप फरस रस गंध सभापा,
पिंडस्थ ध्यानकी साखा ॥१४॥ इनकी लगत
ता साधे, लगत शीख निज गुण आराधे, रहइ
तसो मूढ कहावे, अलख लखेसो विचक्षण
॥१५॥ इस स्वरूपमे मगन रहे उसकों मंद
कहा ए वात किस राहसे है? ॥१०॥
उत्तरः—इस प्रश्नके चतुर्दश अंकके दोहेमे

ह्रीं श्री कल्पन्नाष्ये ॥ गाथा ॥ ( निस्सकम्मनिस्स
कम्मेचेइएसव्विहिंथुइतिन्नि वेलवचेईयाणिय नाउं
इक्किकियावावि ) ॥१॥ व्याख्या ॥ एक निश्राकृ
उसकों कहते हैं कि,जो गच्छके प्रतिवधसें वनी है
जैसा कि, यह हमारे गच्छका मंदिर हैं दूसरा श्र
निश्राकृत सो जिस उपर किसी गच्छका प्रतिव
नही हैं इन सर्व जिनमंदिरोमे तीन तीन थुइ
देववंदन करना जे कर सर्व मंदिरोमे तीन ती
थुइके देववंदन करते, वहुत काल लगता जा
तथा जिनमंदिर वहुत होवे, तदा एक एक जि
मंदिरोमें एक एक थुइ पढके देववंदन करे
वास्ते सर्व जिनमंदिरोमे विशेष रहित न्नक्ति व
श्ररू श्रशकपरिहारसे श्रविधि श्राशातन
दोप अपने जाण श्रजाणमे लगा होय, तिस
सर्व जिनपूजादि कृत्य करके श्रविधि श्रा
तना निमित्त मिथ्याउष्कृत देणा. यही श्र

॥११॥ प्रश्न–मिथ्यात्वके २५ नेद कहे हे. सो कोन कोनसे हे?॥१॥ओर किस सूत्रमे हे?॥२॥ द्रव्य मिथ्यात्व कहा?॥३॥ नाव मिथ्यात्व कहा? ॥४॥ निश्चय मिथ्यात्व कहा?॥५॥ व्यवहार मिथ्यात्व कहा? ॥६॥ इन ठहोका पृथक् २ करके स्वरूप कहणा ॥

उत्तरः–इन ठ प्रश्नोका पृथक् पृथक् स्वरुप क्रम राहसे हे तहां प्रथम मिथ्यात्वके २५ नेद विवरण सहित लिखते हे ॥ प्रथम तो मिथ्यात्व पांच प्रकारका हे ॥ ॥ १ ॥ अनिग्रह मिथ्यात्व ॥२॥ अननिग्रह मिथ्यात्व ॥३॥ अनिनिवेश मिथ्यात्व ॥ ४ ॥ संशय मिथ्यात्व ॥ ५ ॥ अनानोग मिथ्यात्व ॥१॥ प्रथम अनिग्रह मिथ्यात्व हे, सो जो जीव ऐसा जानता हे कि, जो कुठ मैनें समजा हे, सो सत्य हे औरोंकी समऊ ठीक नहि सच जूठकी परीक्षा करनेका मनन्नी नही हे.

तो पिंमस्थ ध्यानकी साखा इतने प्रकार
सो बताइ अरू पंचदश अंकके दोहेमे कहा
पिमस्थ ध्यानकी साखासें मनसा साधे
मनका मामामोले मेटके मन थिर करे, अ
थिर होते हीज आत्मगुणकी आराधन
वो विचक्षण कहावे, और आत्मगुण विचा
जो अकेली पिमस्थ ध्यानकी साखामे ह
गन रहे, वो प्राणी मूर्ख कहावे अरू पिमस्थ
की साखासें अलखका लखाव लखे, वो ह
क्षणताको प्राप्त होता है भावार्थ यह
आत्मस्वरूप प्रगट करणेके लिये पिमस्थ
का ध्यावणा है, वो तो मूर्ख मदबुद्धि नह
जाता है अरू जो अकेली पुद्गलदशामें
हो के पिमस्थ ध्यान ध्याता है, वो मूर्ख त
बुद्धि कहलाता है ॥ इति तत्व ॥ इति द
श्नोत्तर सपूर्णम् ॥

ुक्तियों बना करके अपने मन माने मतकों
्थ करे, वादमे हार जावे तोजी न माने ऐसा
व अती पापी अरू बहुल ससारी होता है.
ा मिथ्यात्व प्रायः जो जैनी जैनमतको विपरीत
पन करता है, उसमे होता है. जैसें गोष्टमाहि
ादिक हूये है, इस वार्त्ताकों जाष्यकार श्री अ-
यदेवसूरि नवांगी वृत्तिकारक नवतत्व प्रकर-
की जाष्यमे कहते हैं. तथाच जाष्यकारः (गो-
माहिलमाइणं जं अजिनीविसितुतयं) आदि
ंदर्से वोटिक शिवजूतिकों अजिनिवेशिक मि-
ात्व जानना ४ चोथा संशय मिथ्यात्व सो जि-
क्त तत्वमें शंका करणी. यथा यह जीव असंख्य
शी हे, वा नहि है? ॥ इसतरे सर्व पदार्थोंमें शं-
करणी तिससेंति जो उत्पन्न होंवे सो सांशयि
मेथ्यात्व (तदाह जाष्यकृत्) (सांशयिकं
यात्वं तद शेपया शंका संदेहो जिनोक्त तत्वे

सच्च जूठका विचारज्ञी नही करता है वो अपने
मनमें ऐसें जानते है कि, जो मत हमने अंगीकार
कीया है, वो सत्य हैं और मत जूठे है ऐसे जिस
के परिणाम होय, वो अभिग्रहीक मिथ्यात्व क
जाता है और दूसरा अनभिग्रह मिथ्यात्व
सर्वमतोंकों अच्छा माने, सर्व मतोसे मोक्ष है इ
वास्ते किसीको बूरा न कहना सर्वकों नमस्क
करना यह मिथ्यात्व जिनोंने कोइ दर्शन ग्रह
नही करा, ऐसे जो गोपाल बालकादि तिनकों
बल कि, यह अमृत अरू विषकों एक सारिखे ज
ननेवाले हे. ३ तिसरा अभिनिवेश मिथ्यात्व
जो पुरुष जान करके जूठ बोले प्रथम तो अ
नसें किसी शास्त्रार्थकों जूल गया, पीछे जब क
विद्वान् कहे कि, तुम इस बातमें भूलते हो,
जूठे मतका कदाग्रह ग्रहण करे, जात्यादि अ
मानसें कहना न माने, उलटी स्वकपोल कल्पि

कुयुक्तियों बना करके अपने मन माने मतकों सिद्ध करे, वादमे हार जावे तोभी न माने ऐसा जीव अती पापी अरू बहुल ससारी होता है. ऐसा मिथ्यात्व प्राय. जो जैनी जैनमतकों विपरीत कथन करता है, उसमे होता है. जैसे गोष्टमाहि लादिक हूये है, इस वार्त्ताकों भाष्यकार श्री अभयदेवसूरि नवांगी वृत्तिकारक नवतत्व प्रकरणकी भाष्यमें कहते हैं. तथाच भाष्यकारः (गोष्टमाहिलमाइण जं अभिनीविसितुतय) आदि शब्दसें बोटिक शिवभूतिको अभिनिवेशिक मिथ्यात्व जानना ४ चोथा संशय मिथ्यात्व सो जिनोक्त तत्वमें शंका करणी. यथा यह जीव असंख्य प्रदेशी है, वा नहि है? ॥ इसतरे सर्व पदार्थोंमें शंका करणी तिससेंति जो उत्पन्न होंवे सो सांशयिक मिथ्यात्व (तदाह भाष्यकृत्) ( सांशयिकं मिथ्यात्वं तद शेषया शंका संदेहो जिनोक्त तत्वे

प्रदेश मिथ्यात्व है इन चारो भेदोंके अनेक भे
है उसमेसे कितनेक लिखते है ॥१ धर्म जो
वीतराग सर्वज्ञने कहा है, तिसकों अधर्म मा
॥ २ ॥ अरु जो हिंसा प्रवृत्ति प्रमुख आश्रव
अशुद्ध अधर्म है, उसको धर्म माने ॥३॥ जो
सत्य मार्ग है, उसको मिथ्यात्व कहे या माने॥४
जो विपर्यीयोका मार्ग है, उसकों सत्मार्ग क
या माने ॥ ५ ॥ जो साधु सत्तावीश गुणो क
विराजमान है, उसकों असाधु कहे या मा
॥ ६ ॥ जो आरम्भ परिग्रह विषय कषाय कर
भरा हूआ है, अरू उपदेश ऐसा देता है की, जि
सके सुननेसे लोकोंकों कुवासना लुच्चपणा कुबु
उत्पन्न होवे, ऐसा गुरु पत्थरकी नौका समान ऐ
जो अन्यलिंगी कुलिंगी तिनकों साधु कहे॥७॥
टकायोंके जीवोंकों अजीव माने॥८॥ काष्ट सोना
जो अजीव है, उनकों जीव माने॥९॥ मूर्त्ति पदार्थों

ों अमूर्त्ति माने ॥१०॥ अमूर्त्ति पदार्थोंको मूर्त्ति
ाने. यह दश नेद मिथ्यात्वके है. तथा दूसरे ब
ाद मिथ्यात्वके है सो कहते है ॥१॥ लौकिकदेव,
। लौकिकगुरु, ३ लौकिकपर्व ४ लोकोत्तरदेव, ५
ोकोत्तरगुरु, ६ लोकोत्तरपर्व, १ प्रथम लौकिक
देवगत मिथ्यात्व जो है, सो जो देव राग द्वेष क-
रकें नरा हूआ हे, एक उपर महेरवान होता है,
कका विनाश करता है, स्त्रीके नोग विलासमें
ग्न है, अरू अनेक प्रकारके शस्त्र जिसके हाथमें
, अपनी ठकुराइमें अनिमानी है, हाथमें माला
पता है, सावद्य नोग पचेंद्रियका वध चाहाता
, ऐसे देवकों जो पुरुष परमेश्वर माने, अथवा
रमेश्वरका अंश अवतार माने अौर पूजे, तिसके
हे हूये शास्त्रसें हिंसाकारि यज्ञादि करे, अनेक
रेंके पापधर्मके नामसें प्रवृत करे, इस लौकिक
ेवके अनेक नेद है. सो मिथ्यात्वसित्तरी प्रमुख

ढाउगा, दीपमालाकी रोशनि करुगा, रात जायन
करुगा, ऐसे जावोसे वीतरागको माने इस
यह मिथ्यात्व है, जो पुरुष चितामणिका द॥
सेती काचका टुकडा मागे, वो युक्त नही, ।जस
अपणे कर्मोदयका स्वरूप मालुम नही, वो
जीव ऐसा होता है, यह लोकोत्तर देवगत ।
है, ५ पाचमा लोकोत्तर गुरुगत मिथ्यात्व सो
साधुका वेष रक्खे अरू आप निर्गुणी होवे,
वाणीका उत्थापक होवे, अपणे मन कल्पि
उपदेश देवे, सूत्रका सच्चा अर्थ तोडे, ऐसा
उत्सूत्रका प्ररूपक तिसकों गुरु जानकर मान
न्मान करे तथा जो साधु गुणी तपस्वी आचार
क्रियावंत, तिसकी इस लोककी इच्छा करके सेवे
करे, बहुमान करे,मनमें ऐसें जाणे कि,इनकी वहु
सेवा करुगा तब इनकी महेरवानगीसें धन ऋद्धि
स्त्री पुत्रादि मुजकों मिलेंगे यह लोकोत्तर गुरुगत

थ्यात्व है. ६ ठठा-लोकोत्तर पर्वगत मिथ्यात्व
प्रभुके पांच कल्याणिककी तीथी तथा दूसरे
के दिन तिन दिनोमे धनादिक वास्ते जप
प धर्मकरणी करे, सो लोकोत्तर पर्वगत मिथ्या-
है, इत्यादि मिथ्यात्वके अनेक विकल्प है.
तु वो सब पूर्वोक्त अभिग्रहादि मिथ्यात्वमें ही
तर्भूत है. इन २५ मिथ्यात्वके कितनेक भेद
स्थानागादि सूत्रोंमे हे. अरु कितनेक दर्शन
द्धि प्रमुख प्रथमानुयोगमे हे अरू सर्वका स-
च्चय मिथ्यात्वकुलकमे कहा है. २ अरू द्रव्य
भाव २ निश्चय ३ व्यवहार ४ ए चार मिथ्या-
कोइ ग्रंथमे हमारे दृष्टिगोचर भये, या न
ये, ऐसी निश्चय स्मृति नहि है. पण मिथ्यात्वके
घन्य भेद ४ तथा ५, मध्यम भेद २, उत्कृष्ट भेद
नेक तरहके हे परंतु सर्व भेद मूलभेदमे स-
ावेश होते है. तातें निर्विष मिथ्यात्व मोहनीके

दल हे, वो द्रव्य मिथ्यात्व कहलाता हे॥ यड
विशेषावश्यकवृत्तो ॥ तयथेसुप्रदीपस्य स्व
भ्रपटलेगृहनप्रकरोत्याद्यत्तिकाचित्तेवमेत् द्रव्ये
पि ॥१॥ एक पुजी द्विपुजी त्रिपुजीवा ननुक्रमात
दर्शन्युनयवांश्चैव मिथ्या दृष्टिर्कीर्तित ॥ २
नावार्थ यह हे कि, इहा लोकके विषे जेसें अभ्र
खका पमातरमे रहा हुवा दीपक सर्व स्थान
ज्योत करे, परंतु अभ्रख दीपकके आममे रहे
तों कुछ दीपकका प्रकाशकी न्यूनता कर स
नही तैसे ही सोधा हुवा मिथ्यात्व दल वो नी कु
न्यून श्रद्धाकर शके नही ताते वो द्रव्य मिथ्य
त्व सनव हे ॥ १ ॥ अरू वो ही कर्मदल प्रदे
मोहनीका विपाकमे आये, जब परिणाम मिथ्य
त्व होय. वो नाव मिथ्यात्व कहलाता हे ॥ २
तथा सत्तागत जो मिथ्यात्व मोहनीका कर्मद
हे, सो प्रदेश मिथ्यात्व हे वो निश्चय मि यात्व क

वे ॥३॥ और अंतरभाव विना लोक दाक्षिणता
इकर्से मिथ्यात्व करणी करे, जो प्रवर्त्तना मिथ्या-
त्व वो व्यवहार मिथ्यात्व कहावे ॥४॥ एसी रीत
ई चार मिथ्यात्व जैनशास्त्र न्यायसे हमारेकुं ना-
ाण हुये तैसें लिखे है पीछे बहुश्रुत ग्रथकार कहे
ो प्रमाण नास्तिअस्माकं किंचिद्धि निवेश
ते तात्पर्य' इति एकादश प्रश्नोतर सपुर्णम् ॥
११ ॥६॥

---

प्रश्न –अर्हंत १ सिद्ध २ आचार्य ३ उपा-
ाय ४ साधु ५ ए पाच पद हे, जिन के आत्मभूत
ुण तो केवली गम्य हे, पण व्यहारमे अनात
भूत लक्षण कोन रीतीसे पेहेचाणना ? जैसे मु-
का रजो हरण मुखवस्त्रिका करी पहेचान हे, ते
पंचोका भिन्न २ करके लिंग कहणा ॥

उत्तर.–लिंग अरू चिन्ह एकार्थ हे ताते अर्हं

त महाराज तो १००८ 'अनात्म आत्म चूतलक्ष
ण तथा अष्ट प्रातिहार्यादि बाह्य विभूतीसें प
चान होती हे १ अरू चर्तुरदशम गुणस्थानव
शैलेसि अवस्थामे अनादि जीव प्रदेशसें मिले हु
नाव तेज सकार्मण शरीरका पुद्गल प्रमाण वि
टन होके द्रव्य तेजस कार्मण शरीरमे सबघ हो
अजोगी केवलीका शरीरकी अवगाहना तेजस
रीरका योगसे रक्त प्राये हो जाती हे इस अना
आत्मलिंगसें सिद्ध माहराजकी पहेचान हो
हे ॥२॥ तथा आचार्य महाराजका रजो हरणा
अनात्म भूत लिंग तो मुनीमहाराज अर्थात् स
धु सदृश ही होता है, पण रजोहरणादि उपग
अधिक मोल्य तथा शुभ्रादिशोभायुक्त शोभनी
साधुसें अधिक होते है अरू श्री स्थानाग सूत्र
वहार भाष्योक्त पांच अतिशय रूप अनात्म 
लिंगसें पहिचाने जाते है ॥३॥ और उपाध्याय

हाराज केनी रजोहरणादि उपगरण तथा पंच
ातिशय ता आचार्य सदृश हे, परतु उपगरणादि
ोंनामे कतु तरतम नाव होय अरू विहारादिमें
प्राचार्य पृष्टगामी तथा न्यूनासन स्थायि होय इ-
यादि अनात्म नूनचिन्होसें उपाध्यायजी महाराज
की पहेचान होय ॥४॥ अरू पंचम पद तो रजोह
ग़ादि चिन्हसें प्रसिद्ध ही है, परं आचार्य उपा-
गायसें न्यून नावे जाणणा ॥ इति द्वादस प्रश्नो
रं संपूर्ण ॥१२॥

---

प्रश्न.—आगारपणामें तीन दरजा कहते है॥
नी ॥१॥ सम्यक्ति २ श्रावक ३ इनातीनोका व्य
हारमें कोनकोनसा वाह्य लक्षण करी पेहेचाण
णा ॥ जु०म०प्र० ॥८॥

उत्तर —पूर्वकालमें आगारपणेमे अर्थात् जै
गृहस्थोके दो दर्जे कहलाते थे,एकतो सम्यक्ति

श्रावक दुसरा विरती श्रावक,तिनमे जो सिद्धां
क्त विधी पात्र युक्त श्री सुगु के पास व्यवहार स
कितका उच्चार करके श्री जिनद्रपूजादी सम्य
करणीम प्रवर्त्ते, वो सम्यक्ती श्रावक कहलाते, ति
के जिनोपवीत तथा उत्तरीय १ और नाजतिल
दीपशिखा सदृश २ बाह्य द्रव्य चिन्हसे पहि
नथी, और दुसरा सम्यक्त मूल द्वादशव्रतोमेसें
थाशक्ति जावजीव व्रतोको धारण करते, वा विर
श्रावक कहलाते तिनोका बाह्य चिन्ह नाल ति
लक १ जिनोपवीतथा उत्तरीय २ और उत्तरास
३ अरु धोतीकी एक लाग खूनी ४ इत्यादि बा
चिन्होसें पहिचा नथी तैसे ही सम्यक्ति श्रावक त
था विरती श्रावककी भी पूर्वोक्त हर किसी बाह्य
लक्षणोसें वर्त्तमानकालमें भी पहिचान होती है, प
श्री महावीरजीसे ७० वर्ष पीछे और श्री पार्श्व
नाथजीके पीछे छठे पाट श्री रत्नप्रभ सूरिजीने

रवाड़के श्रीमालनगरसें जिस नगराका नाम अब
ल्लमाल कहते हैं तिस नगरसें किसी कारणसें
ोमसेन राजाका पुत्र श्री पुञ्ज तिसका पुत्र उत्पल
ुमर तिसका मंत्री ऊहड़ ए दोनो जण १८ हजार
ुटुंब सहित निकलके योधपुर जिस जगे है,तिससे
ीस कोसके लगभग उत्तर दिशिमे लाखो आद
ीयोकी वस्ती रूप उपकेश पट्टन नामक नगर व-
ााया,तिस नगरमें सवालक्ष आदमीयोको रत्नप्रभ
ूरिजीने श्रावक धर्ममे स्थापन किये, तिस समय
तिनके अठारह गोत्र स्थापन करे तिनके नाम ता
तेहड़ गोत्र १ बाफणा गोत्र २ कर्णाटगोत्र ३ वलह-
ा गोत्र ४ मोराक्षगोत्र ५ कुलहटगोत्र ६ विरहटगो
ा ७ श्री श्रीमालगोत्र ८ श्रेष्टिगोत्र ९ सुचेतीगोत्र
०अइचणाग गोत्र ११ भूरिगोत्र भटेवरा १२ भा
गोत्र १३चीचटगोत्र १४ कुंभटगोत्र १५ डिडुगो
१६ कनोजगोत्र १७ लघुश्रेष्ठी १८ यह अठारही

जैनी होनेसें परस्पर पुत्र पुत्रींका विवाह करने लगे
ओर परस्पर खाने पीने लगे इनमे कितनेक गोत्रांवा
रजपूत थे और कितनेक ब्राह्मण औरबनिये भी थे
इस रीतसे पोरवाडवंश श्री हरिभद्र सूरिजीने श्री
वालदेशमें स्थापन करा और तिनका विक्रम सवं
स्वर्गवास होनेका ५८५का ग्रंथोमे लिखा है और
जैपुरके पास खंमला गाम हे तहां वीरात् ६४३
वर्षे जिनसेन आचार्यने ८२ गाम रजपूतोके और
दो गाम सोनारोके एव सर्व गाम ८४ जैनी करे, ति
नके चोरासी गोत्र स्थापन करे,सो सर्व खंमेलवा
ल बनिये जिनको जैपुरादिक देशोमें सरावगी क
हते हे और विक्रम संवत् २१७ मे हसारसें द
कोशके पासलेपर अग्रोहा नामक नगरका अड
मटेकरा वडा भारी हे तिस अग्रोह नगरमें विक्र
संवत् २१७ के लगभग राजा अग्रके पुत्राकों औ
नगरवासी कितने ही हजार लोकोको लोहाचा

जैनीकरा. नगर उजड्न हुआ पीछे राजभ्रष्ट हो
से और व्यापार वणिज करनेसे अग्रवाल वनी
कहलाये इसी तरे इस कालकी जैनधर्म पालने
ाला सर्व जातिया श्री महावीरसें ७० वर्ष पीछे
ां लेके विक्रम संवत् १५७५ साल तक जैन जा-
त्यों आचार्योंने बनाइ हे, तिनसें पहिलां चारोंही
र्ण जैनधर्म पालते थे इस समयेकी जातियों न-
ीथी इस वास्ते जैनीका दर्जा पूर्वोक्त दोनुं दर्जेसें
ुदा दर्जा नही कहलाता था,परंतु पूर्वोक्त जैन जा-
ीयोके अनुजावसें वर्त्तमान कालमें जैनीयोका
र्जा जूदा कहलाता है, तिनकी पहिचान जी केव-
नालतिलक १ अरू अनक्ष्यवर्जन २ इन दोनु
ह्य लक्षणसें होती है ॥ इति त्रयोदश प्रश्नोत्तर
पूर्णम् ॥

---

प्रश्नः—वर्त्तमानमें आचार्य १ उपाध्याय, २

साधु ३ श्रावक ४ सम्यक्ति ५ इन पांचोके जा
निश्चयमे तो केवली गम्य हे, परतु व्यवहारमें त
प्रवर्त्ति अशुद्ध हे जिनोक्त प्रमाण हे नही और अ
पने अपने मनसे प्रवर्त्ति करते हैं जब इस प्राणी
के केसा कर्मबंध और केशी गतीकी प्राप्ती होवे
सूत्रमे तो एसा लिखा हे, यडक्त मूलसूत्र ॥ वह
इमे असाहु, लोएवुच्चंती साहुणो ॥ न लवे असा
साहुति, साहु साहुति आलवे ॥४G॥ नाण दस
संपन्न संजमे य तेवरय ॥ एव गुण समाउत्त संज
साहु मालवे ॥४ए॥ जैनमार्गमे तो गुणो लारे पू
जा निगुणाने पूजे वी मारग डजा इतिज्ञेयं ॥

उत्तर —जगवती तथा महानिशीथादि सू
त्रोमें जगवंतने कहा हे कि, एकवीस हजार व
श्री डुपसहाचार्य पर्यंत मेरा चतुर्विध संघ इस भ
रतक्षेत्रमे चलेगा इत्यादिक श्री सर्वज्ञ वचनके आ
धारसें वर्त्तमानमे आचार्यादिक पांचोकी व्यवह

त्ति जिनोक्त प्रमाणसें सर्वथा अशुद्ध नही
ननी क्योंकि श्री अंगचूलिया सूत्रमें कहा हकि,
पाठ॰॥ एमा पवावण विही जंबू ममं पुरो सम-
णं नगरया महावीरेण विआहिया एआए
ही इंदनूइ पामोरका चउद समण साहस्सिया
ाविया छत्तीस अज्जीया साहस्सिउ पवाविया
हा तुम्मपि मए पवानिउ तहा ममपि पच्छा अन्ने-
व आयरिय उवज्ञाया सीस सीसणीण पवाइस्सं
ते जाव डुप्पसहसूरीवि एव पवावइस्सइ एस पर-
रा सुचा एआपवावण विही पवइयाकालाइदोसे
णं बउमेहाबुद्धिणं हाणीए पमाय सेवमाणा वि
सुद्धं जिणमयं पयासयता साहुणो णेयवा ॥ इस
ाठमें यह नाव है कि अंगचूलिकाक्त दिक्षा विधिसे
दीक्षित साधु बउ मेधादी बुद्धिहाणीसें बकुसकु-
शीलपणाके योगसें श्री नगवतो सूत्रोक्त प्रमाद
प्रमोसेवणा अतिचार कारणसेवन करतेकु पण

विशुद्ध जिनमत प्रकासन करता उपसहाचार्य
तक गुरु परंपर दीक्षित साधु आराधक जाणणा.
तथाचोक अगचूलिका सूत्रे तत्पाव ॥(संजया उ-
विहा पणत्ता तंजहा पमत्त संजया अपमत्त संजया
तत्थणं जे अपमत्त संजया ते णो आयारंनाणो प
रारंना जाव अ० रंना तत्थणं जेत पमत्तसंजया ते
सुहं जोगपडुच्च णोआयारंना णोपरारंना णोतउ-
नयारंना अणारंना सेव असुन जोगपडुच्च आयर
नावि परारनावि तउन्नयारंनावि णो अणारना ए
वं जंबूउप्पसहो जाव वकुसकुसजेहि निच्चपवि-
उस्सइ जहा विवाहपणत्तीए पंचे णियंठा इंदनूय
स्सपुरच्च बूइथा तारिसाण दिट्ठीए विहरंताणं णो
आणा विराहगा णो सगणे परगणे सविगो साहु-
णं हीलना ममावि होलिस्सति सेसंउवंगचूलिया
तो गहेयव ॥ (इस पाठके पर्यंतमे यह नाव कहा
के उप्प सहचार्य तक वकुसकुसीलसें तीर्थ प्रव

लेंगा तो अब विचार करना के बकुशकुशील नि-र्ग्रंथ होगा वो जिनोक्त प्रमाणसें विपरीत अपने मनमानी प्रवर्त्तना कदापि न करेगा और जो मन मानी प्रवर्त्तना करेगा, वो बकुशकुशील निग्रथ कहा न जायगा अरू दुर्गती कर्मबंधका ज्ञागी होगा तथा जैनमतके शास्त्रोमे गुरु आचार्यादिकका स्वरूप लिखा है वैसीवृत्तिवाला कोइ ज्ञी जैनका आचार्य वा साधु देखनेमे नही आता है, तो फेर जैनमतके साधुन्को इसकालमें गुरु वा आचार्यादिक क्युं कर मानना चाहिये? यह कोइ पूर्व आशंका करे उसका उत्तर समाधान यह है कि, अैसी आशंकाकारने किसी गीतार्थकी संगत नही करी होगी, क्यों कि जे कर जैनमतके चरण करणानु योगके शास्त्र पढे होते अथवा किसि गीतार्थ गुरुके मुखारविंदसें वचनरूप अमृतपान करा लेता,तो पूर्वोक्त संशयरूप रोगकी कसमसी कदा

माननी चाहिये तथा जीवानुशासन सूत्रकी वृ
त्तिमें भी लिखा है कि, पांचमे कालमे साधु ऐसा
भी होवे तो भी संयमी कहना चाहिये तथा निशी
थमें भी लिखा है ॥ भाष्य गाथा (जासजमया
जीवे सु तावमूलेगुणुत्तरगुणाय इत्तरियछेयसंजम
नियठवउसापडिसेवी)॥१॥ इस गाथाकी चूर्णिकी
भाषा लिखते हैं छकायोंके जीवो विषे जब ता
इ दयाके परिणाम है, तब ताइ बकुशनिर्ग्रंथ और
प्रतिसेवना निर्ग्रंथ रहेगें इस वास्ते प्रवचन शून्य
और चारित्र रहित पंचमकाल कदापी न होवेग
तथा मूलोत्तर गुणोंमे दूषण लगनेंसे तत्काल चारित्र
नष्ट भी नही होता मूल गुणभंगमें दो दृष्टांत हैं
उत्तर गुणभंगमे मंमपका दृष्टांत है निश्चयनयमे
एक व्रत भंग हूया सर्व व्रत भंग हो जाता है,परंतु
व्यवहारनयके मतसें जो व्रत भंग होवे, सोइ भंग
होवे दूसरे नहीं इस वास्ते वहूत अतिचारके ल

गनेंसें संयम नहीं जाता "॥ क्योंके जहां तांइ छेद प्रायश्चित्त लगे तहां तांइ संयम सर्वथा नही जाता परंतु दोष लगे जिसका दम प्रायश्चित्तादिक लेणे का कामी न होय, अरु जो कुशील सेवे और धन रक्खे तथा कच्चा पानी पीवे अने कारण विना लिंगका बदला करे ऐसा प्रवचन अनपेक्ष असाधुकुं साधु कहनेकी मना करनेके लिये(बहवेइमेअसाहु) ॥ ये मूल सूत्रकी गाथा कहीहे ने पूर्वोक्त बकुश कुशीलादि साधुजकु साधु केहने आश्री नाणदंसणसपन्नं ॥ ये गाथा कही है इस लिये जिन मारगमे तो गुणोके पीछे पूजा हे, ने निगुणोंकुं पूजे सो मार्ग दूजा. ये वचन कहना अच्छा है पण इस कालमे तो गुणवान साधु हेई नही ऐसी आशंकासें पूर्वोक्त वचनका कहनेवालेको महामिथ्या दृष्टि जानना. क्योके श्री स्थानांग सूत्रमे लिखा है जो अतिचार बहुत लगते देखके और आ लो-

चना प्रायश्चित्त यथार्थ कोइ लेता देता नहीं है
इस वास्ते साधु आचार्यादि कोइ भी नहीं ऐसे
कहे वो चारित्रभेदिभी विकथाका करनेवाला है
फेर जिसी किसीकु इस प्रश्नका विशेष शका सम
धान देखनेकी इहा होय तो अस्मत्कृत् चतुर्थ
स्तुति निर्णयशंकोद्धार देखके अपना मनका स
माधान करके वीतरागकी आज्ञामे वर्त्तना यही म
नुष्य जन्मका श्रेय हे ॥ इति चतुर्दश प्रश्नोत्त
संपूर्ण ॥ १५ ॥

---

प्रश्न — जहा जहां सूत्रोमे शक्रस्तव कहा है,
तहा तहा सिद्धोंकु तो ( ठाणसपत्ताणं नमोजि
णाण) इत्यादि ओर अरिहतोंकु तथा धर्माचार्यकुं
शक्रस्तवमें (ठाणसपाविउकामस्स) इत्यादि पाठ
कहा, पण॥ जे अइआसिद्धाका पाठ कहा नही, सो
कारण क्या? यह पाठ प्राचीन हे के,अर्वाचीन है.?॥

उत्तर.-पढमअहिगारे वंदे नावजिणे वीय-
एण दव्वजिणे ॥ इत्यादि श्री चैत्यवंदनन्नाष्यके व-
चनसें (नमुत्थुणं) से लेके (जियनयाण) पर्यंत जो-
तीर्थंकर केवलज्ञान प्राप्त हुये है, असें नाव तीर्थंक
रोंकुं शक्रस्तवके प्रथम अधिकारके विषे वंदन किये,
अरु दूसरेमें आगामी होनेवाले जो डव्यजिन ति-
नोंकु वंदन किये यह पूर्वोक्त शक्रस्तवमें दो अधि-
कार कहे तिसमें प्रथम अधिकारतो बहुत सूत्रोंमें
है अरु ( जेअइआसिद्धा जेनविस्संति ) इत्यादि
गाथामें जो डव्य जिनवंदनरूप दूसरा अधिकार है,
सो नी श्रुतस्तवकी आदिमे आइहुइ पुक्खरवरदी
नामकी गाथा के विषे हे,वो अर्थसे तो तिस श्रुतस्त
वके अभ्यंतरहीज आवश्यकचूर्णीकेविषे वर्णन
करा है ॥

॥ यथा ॥ उक्कोसेणं सत्तरिसएण जिणवरसयं
जहन्नएणं वीसतित्थयराए एतायएगकालेण नवति.

अइआ अणागया अणेंता'ते तिन्नयरा नमसति
यह पाठ हे ॥ इहां कोइ आशका करे के यहां श्रुत-
स्तवमे यह पाठ कहने योग्य है, तैसें कहो पण इहा
शक्रस्तवके अंतमे पढनेसें क्या मुतलब हे? तिसकु
आचार्य कहते है कि,नाव अरिहंत वंदनानंतर द्र
व्य अरिहत वदनका अनुक्रम मासपणा हे,तिस लि
ये पूर्वाचार्योंने शक्रस्तवके अंतमे यह पाठ स्था
न करा हे इसवास्ते आयधिकारमें नी नवमी स
दाके विषे कुछ कहणेसे तिसका विस्तरार्थपणा है
ऐसा प्रगटार्थ जाणणेसे यह अधिकार नी सूत्रम
जाणणा ॥ तथा चोक्तंनाष्ये॥आवस्सयचुणीए
नणियं सेसया जहिच्छाए ॥ तेण उच्चंताइवि अ
गारा सुयमयाचेव ॥४७॥ बीतसुयच्छयाइ अच्छ
वच्चित्तंतहिंचेव ॥ सक्कच्छयतेपढिव दवारिहवसरि
यडछो ॥४८॥ इत्यादि भाष्यचूर्णीके वचनसें
अइआका पाठ भी सूत्रमयि है. क्योंके यह गा

चतुर्दश पूर्वधर श्रुतकेवली श्रीभद्रबाहुस्वामीजी कृत श्री आवश्यक निर्युक्तिकी हे. ताते प्राचीन हे पण अर्वाचीन नही हे. इति पंचदशमं प्रश्नोत्तरं सपूर्णम्: ॥१५॥

---

प्रश्नः—जैनी लोक सदाकाल जनोइ रखते ही ॥१॥ और पूजनकी वखत रखते हे, जिसका कारण क्या? ॥२॥ और कितना तारकी? ॥३॥ अरु क्या प्रमाण? ॥४॥ और ऊपर तीन ग्रंथी लगाते हे सो क्यों? ॥५॥ और लघुशंकादि वखत कानपर क्यों रखणा? ॥ १६ ॥

उत्तरः—जैन लोकोंके सदाकाल जिनोपवीत रखनेका संभव हे, पण जनोइ नहीं रखते तिसका अभिप्राय आवश्यक सूत्र तथा प्रथमानुयोगमें ऐसा लिखा हे कि, जब भरतने अपने भाइयोंकों आज्ञा मनाने वास्ते दूत भेजा, तब ति

नोने विचार करा कि, राजतो हमको हमारा पिता
दे गया है,तो फेर हम जरतकी आज्ञा क्योंकर मानें
चलो पितासें कहे, जे कर अपना पिता श्री रुषभ
देवजी कहेगें कि, तुम जरतकी आज्ञा मानो, तवतो
हम आज्ञा मान लेवेंगे जे कर हमारा पिता कहेगा
के, लडो तो हम लडेंगे। ऐसा विचार करके,कैलास
पर्वतके ऊपर श्रीरुषजदेवजीके पास गये तव रुषज
देवजीने उनके मनका अजिप्राय जानकर उनकों
उपदेश करा जो उपदेश कराथा सो श्री सूत्ररुताग
सूत्रके दूसरे वैतालीय अध्ययनमे लिखा है,तवते
उपदेश सुनकर अठानवे ॥ए८ ॥ पुत्रोने दीक्षा ले
लीनी सर्व कपडे गोड दीये इस वार्त्तामे जरतकी
अपकीर्ति हुइ, तव जरत चक्रवर्त्ती पांचसो गामे
पक्वान्न लेकर समवसरणमे आया और कहने लगा
कि, में अपने जाइयोकों जोजन कराउगा और
मेरा अपराध क्षमा कराउगा, तव श्री रुषजदेवजी

ने कहा कि,ऐसा आहार साधुओंको लेना योग्य नहि
तब नरत मनमें बडा उदास हूआ. नरतने कहा
अब में यह आहार किसकों देउं ? तब शक्रेन्द्रने
कहा कि, जो तेरेसें गुणोमे अधिक होवे तिनकों य-
ह नोजन देवो तब नरतने मनमें विचार करा कि,
मेरेसें गुणाधिक तो श्रावक है. तब नरतने बहुत
गुणवान् श्रावकोंको वो नोजन जिमाया, उर उन
श्रावकोंकों नरतजीने कह दीयाकि, तुम सर्व मिल
कर प्रतिदीन अर्थात् रोजकी रोज मेरे इहांही
नोजन करा करो खेति वाणिज्यादि कुछ काम मत
करो नि केवल स्वाध्याय करनेमें तत्पर रहो. नोज
न करके मेरे महिलोंके दरवाजे आगे निकट बैठके
तुमने ऐसे कहनाकि,(जीतोनवान्वर्द्धतेनयं तस्मा
माहनमाहनेति)तब वे श्रावक ऐसें ही करते हूये,
उर नरतराजातो नोगविलासोमे मग्न रहता था
परंतु जब तिनका शब्द सुनता था, तब मनमें वि-

चारताथाकि, किसने मुझे जीता है? तब विचार क॰
राकि, क्रोध मान माया अरु लोभ इन चार कषा-
योंने मुझे जीता है तीनोसेंही नयकी वृद्धि होती
है ऐसा विचार करनेसे नरतको बमा नारी वैरा
ग्य नुत्पन्न होताथा इस भवसरमें रसोइ जीमणे
वाले श्रावक बहूत हो गये, जब रसोइदार रसोइ
करनें समर्थ न रहा, तब नरत महाराजकों निवेदन
कराकि में नही जान सक्ता जो इनमें श्रावक कोन
है? और कोन नही है? तब भरतने कहा, तुम पूछके
उनको नोजन दिया करो तब रसोइ करनेवाले
उनको पूछने लगे कि, तुम कौन हो? वे कहने लगे
हम श्रावक हे फेर तिनोको पूछाकि, श्रावकोंके कि
तने व्रत है? तब तिनोंनें कहा हमारे पाच अणुव्रत
है अरु सात शिक्षाव्रत है इस तरेसें जब जानाकि
यह श्रावक ठीक है, तब उनकों नरतमहाराजके
पास लाये, नरतने उनके शरीरमे काकणी रत्नं

तीन तीन रेखाका चिन्ह कर दीया, अरु छठे -
महिने अनुयोग परीक्षा करते रहे. वे सर्व श्रावक
ब्राह्मणके नामसें प्रसिद्ध हूये क्योंकि जब भरतम-
हाराजके दरवाजे आगे, वे माहन माहन् शब्द वार
वार उच्चारन करते थे, तब लोक उनको माहन
कहने लग गये जैनमतके शास्त्रोमे प्राकृत भाषामे
अबभी ब्राह्मणोंको माहन करके लिखाहै अरु जो
संस्कृती ब्राह्मण शब्द है वो प्राकृत व्याकरणमें बं-
भण और माहणके स्वरूपसे सिद्ध होता है. श्री
अनुयोगद्वार सूत्रमे ब्राह्मणोका नाम वुड्ढ सावया
अर्थात् वडे श्रावक असा लिखा है यह सर्व ब्राह्म-
णोंकी उत्पति हैं अरु वो ब्राह्मण अपणे बेटाको
साधुओको देते हुये, जिनोने प्रव्रजा न लीनी वे
श्रावक व्रतधारी हूए यह रीतितो भरतके राज्यमे
हुइ, अरु जब भरतराजाने ब्राह्मणोको पूजा, तब
दूसरा लोकभी वाह्मणोंको बहूत तरेका दान देने

लग गये, तब भरतचक्रवर्तीनेश्रीऋषभदेवजीके उ
पदेशानुसार तिन ब्राह्मणोंके स्वाध्याय करने वास्ते
श्रीआदीश्वर ऋषभदेवजीकी स्तुति और श्रावक्के
धर्मकास्वरूप गर्भित ऐसे चार आर्यवेद रचेतिनके
यह नाम रक्खे १ संसारनिदर्शनवेद, २ संस्थापन
परामर्शनवेद, ३ तत्वाववोधवेद, ४ विद्याप्रबोधवेद
इन चारोंमे सर्व नय वस्तुके कथन संयुक तिन
ब्राह्मणोंकों पढाये (यत्उक्तं आगमे) सिरिभरहच
क्कवट्टी आयरिय वेयाणविस्सु उप्पत्ती माहणपढण
ठमिणं कहियं सुहज्झाण विवहार ॥१॥ इत्यादि
आगम वचनते जो भरतराजाने वेद बनाए वोवेदों
की स्वाध्याय पूजनादि अवसरमे करते भये यह
रीती तों भरतके राज्यमें रही, पीछे भरतका बेटा
आदित्य यश हूआ अर्थात् सूर्यवंश जिसके सं
तानवाले भरतक्षेत्रमे सूर्यवंशी कहे जाते है, अरु
[illegible] था. तिसके संतान

वाले चंद्रयशी कहे जाते हे,श्री ऋषभदेवजीकेकुरु नामा पुत्रके संतान सब कुरुवंशी कहे जाते हैं, जिनमें कोरव पांभ्व हूये हैं जब भरतका बडा वेटा मूर्यवश सिंहासनपर बैठा तब तिसके पास,कंमका कणी रत्न नहि था,क्योंकि काकणीरत्न चक्रवर्तीके शिवाय और किसी पास नहीं होता है इस वास्ते सूर्ययश राजाने ब्राह्मण श्रावकोके गलेमें सुवर्णमय यज्ञोपवीत करवा दीये (जन्नेउ)इति भाषा तथा भोजन प्रमुख सर्व भरतमहाराजकी तरे देता रहा जब सूर्ययशका वेटा महायश गदीपर बैठा तब तिसने रूपेके यज्ञोपवीत बनवा दीये आगे तिनोंकी सतानोंने पचरंगे रेशमी पट्ट सूत्रमय यज्ञोपवीत बनाते रहे, आगे सादे सूतके बनाये गये यह यज्ञोपवीतकी उत्पत्ति है, भरतके आठ पाट तक तो ब्राह्मणोंकी भक्ति भरतकी तरे करते रहे, पीछे प्रजा भी ब्राह्मणोको भोजन कराने लगे

तव सर्व लगे ब्राह्मण पूजनीक समझे गये आठमा तीर्थंकर श्रीचंद्रप्रनस्वामीके वखत तक सर्व ब्राह्मण व्रतधारी जैनधर्मी श्रावक रहे अरु श्री चंद्रप्रन नगवानके पीछे कितनाक काल व्यतीत नये वाद इस नरतखममे जैनमत अर्थात् चतुर्विध सघ और सर्व शास्त्र विच्छेद हो गये, तव तिन ब्राह्मणानासोंको लोक पूछने लगेकि,धर्मका स्वरूप हमको वतलाउ तव तिनोने जो मनमे माना और अपणा जिसमे लान देखा,सो धर्म वतलाया अनेक तरहके ग्रंथ वनाते रहे जव नवमे श्री सुविधिनाथ पुष्पदंत अरिहंत हुए तिनोने जव फेर जैनधर्म प्रगट करा तव कितनेक ब्राह्मणानासोने न माना, स्वकपोल कल्पित मतहीका कदाग्रह रक्खा साधुउंके द्वेषी वन गये चारों वेदोका नाम नी वदल दीया, अरु उन वेदोमे मतलव नी औरका और लिख दीया ने फेर तिन ब्राह्मणानासोंने धनवं

जोनसें तिन वेदोंमें जीवहिंसा आदेकी प्ररूपणा
करके उलट पुलट करमाले जैनधर्मका नामजी
वेदोंमेसे निकाल दिया ! बलकि, अन्योक्ति करके॥
(वैतदस्यु वेद वाह्य) इत्यादि नामोंसे साधुर्जकी
निंदागर्भित १ ऋग् २ यजु ३ साम ४ अथर्व ए
चार नाम कल्पन कर दिये तिन ब्राह्मणोंमेंसे जि
नोने तीर्थंकरोका उपदेश मान्य करा, उनोने पूर्व
वेदोके मत्र न त्यागे, सो आजतक दक्षिण करणा
टक देशमे जैन ब्राह्मणोके कठ है, ऐसा सुना! और
लोकोने देखा नी है तथा उन प्राचीन वेदोके
बहुतसे मत्र अबी नी जैनशास्त्रोंमें है फेर जैना
गममे यह ही पूर्वोक्त वात कही है कि ॥ जिण
तिह्वे वुह्निने मिह्वत्तेमाहणेहिं तेगविया॥असंजया
णपूआ अप्पाणकाहियातेहि ॥२॥ इत्यादि यहासें
आगे तिन वेदोकी रचना हिंसासयुक्त याज्ञवल्क्य
सुलसा पीपलाद अरू पर्वत प्रमुखोने विशेपकर

रचना रच दिइ तिसका स्वरूप श्रीत्रेशठ सलाका पुरुष चरित्र ग्रथमे आठमे पर्वके दूसरे स्वर्गमें लिखा हे उस मुजब जानना ग्रथ गौरवकेभयसें इहां नहीं लिखा है यहा तो जैनलोक सदा जनोइ क्यों नही रखते? इस प्रश्नका उत्तर इतनाहि है कि, श्रीन्नरतचक्रवर्त्तिने वृद्ध श्रावकोंकी पहेचानके अर्थे चिन्ह किया था, उस चिन्ह सहीत जिनपूजा तथा वेदोंकी स्वाध्यायमे अहर्निस वो वृद्ध श्रावक वर्त्तते हुये आठमे तीर्थकरका तीर्थ विछेद हुआ तव वो श्रावक क्रियासे न्रष्ट होके मिथ्यादृष्टि वन गये, तद पीछे श्री सुविधीनाथ प्रमुख तीर्थकरोका उपदेश माना, तिन ब्राह्मण श्रावकोंकु विगमे हुये आर्यवेदोकु मानने छुमवाये. उसीके साथ यज्ञोपवीत ऐसा नाम अहर्निश धारणेका न्नी छुमवा दिया क्योंके जिस नामावेससे वहोत मिथ्यात्व वृद्धि होय वो नामावेस अच्छी होय तो न्नी त्यागने

योग्य है. तथा चोक्तं पूर्वोक्त जैनवेद विधि प्रतिपा
दक श्री आचारदिनकरे तत्पाठः ॥ जिनोपवीत
मिति जिनस्य उपवीत मुद्रा सूत्र मित्यर्थ ॥ नव
ब्रह्म गुप्ति गर्भ रत्नत्रये तत्पुरा श्री युगादिदेवेन वर्ण
त्रयस्य गार्हस्थ्यान्नृतः स्वमुद्राधारण मुपदिष्टं तत्ती
र्थ व्यवच्छेदे माहनो मिथ्यात्व मुपगतैर्वेद चतुष्के
हिंसा प्ररूपणेन मिथ्यापर्थंनी ते पर्वत वसुराजा
द्यां यज्ञमार्गे प्रवर्तिते यज्ञोपवीतमिति नामधृतं
तत्परं तु मिथ्यादृष्टौ यथेष्ट जिनमते जिनोपवीतमेव
ज्ञातव्यं ॥ जिनोपवीत (अर्थात्) जिनकी गृह-
स्थ मुद्रा नव ब्रह्मगुप्ती गर्भित् रत्नत्रयीरूप(इसका)
प्रथम श्री आदिनाथस्वामी गृहस्थाश्रम युक्त ॥
ब्राह्मण क्षत्री वैश्य तीनो वर्णोंकों धारन करनेका
उपदेश किया है (जबसें) जिनोपवीत, सूत्र मुद्रा-
धारन करनेका व्यवहार प्रचलित हुवा (तिनपीछे)
कितकालके बाद मिथ्यात्व मोहित (पर्व

ह्मणाजासोने चारुंवेदमे हिंसा प्ररूपणा करिके (व सुराजादि) राजाउसें मिथ्या पथ यज्ञमार्ग प्रवर्त्त न किया(ओर)जिनोपवीतका नाम स्थानक यज्ञोपवी त ऐसाही नाम सरु रक्खा(तबसें) लोकीकमे यज्ञो पवीत इस्का नाम कहतेहे मिथ्यादृष्टि यथेछा कहे (जिनमतमे तो) पूर्वोक्त सूत्रमुद्राका जिनोपवी नाम हे वो ही प्रचलित रक्खा यह वात यथार्थ जन नेके लिये यज्ञोपवीत तथा वेदोत्पत्ति प्रमुख पूर्वो वयान लिखा है उस वयानके अभिप्रायसें मतमे वर्त्तमानमे भी श्रावक सदा शास्त्रोक्त वि पूर्वक जिनोपवीत धारन करके सदा श्रावकोक रखना योग्य हे पर वो विधि मर्याद यथार्थ न हो से जिनोपवीत नही रखते है ॥१॥ और पूजन वखत रखते है, तिसका कारण यज्ञोपवीत मसे हीज सिद्ध होता है क्योकि श्री आवश्य वृत्तिमे यज्ञोपवीत ऐसा नामावेससें यज्ञ क

पूजातामे उपवीत जो सूत्रमुद्रा वो दक्षिणकरमे
प्रोधृत नाम धारण करणा वो यज्ञोपवीत कहावे
यह यज्ञोपवीत संस्कृत शब्दका प्राकृत या लोक
भाषामे जन्नोय तथा जनोइ होता हे. तिस वास्ते
जैनशास्त्रोमे यज्ञ नाम पूजाका हे तिस अवसरमे
अर्थात् जिनपूजाकी वखत उपवीत जो प्रकृष्ट
उन्नतपणे धारण करणा, वोहीज जन्नेउ कहाती
है तिस लिये पूर्वकालमे तो श्रावक अहर्निशपू-
जा स्वाध्यायमे वर्त्तते वो सदा रखते अरु वर्त्तमा
नमे काल दोषसें वैसी स्थिरता या यथोक्तविधि न
होनेसे जिनपूजन प्रतिष्ठादिकमे रखते हे पण
सदा नही रखते हे ॥२॥ अब ३।४।५।६। प्रश्नोका
संयुक्त उत्तर यह है कि, श्री आचारदिनकरमें जि
नोपवीतका ऐसा स्वरूप लिखा है। तथाच त
त्पाठः॥ जिनोपवीतरूपं यथास्तनातर मात्रं चतुर
शीति गुणमेकं सूत्रं तत्त्रिगुणं कार्यंततोपि त्रिगु

णां वर्तनीय एतावतैकरततु तथैव रीत्या एता
शं पूर्वोक्त तंद्वय मन्य योजनीय एतावतैक म
यतत्र ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्यानात्रय द्वयमेकं योज्यं
परेषा मते इत्युक्त ॥ कृते स्वर्णमय सूत्रं त्रेतायां
रौप्यमेवच द्वापरेताम्र सूत्रंच कलौकार्प्पास वि
ष्यति ॥ १ ॥ जिनमतेतु सौवर्ण सर्वदा ब्राह्मण
नामेव क्षत्रिय वैश्याना सदा कर्प्पास सूत्र मेव
इति जिनोपवीत युक्ति ॥ भावार्थ ॥ (स्तनातर
मात्र) अर्थात् अपनी हथेली ऊपर सूत्रका (८४)
आंटा देनेसें जितना लंबा सूत्र होय, तिसकों
त्रिगुणा करे जब (२८ हाथ रहे) तथा त्रिगुणा
किया हुवाको और त्रिगुणा करे तब (नव हाथ)
किंचित् उपरात सूत्र रहे (इसको वटके ) तीन
लमी जिनोपवीत बणावे ॥ जिसके नव ततू ग
र्भित, त्रिसूत्रमइ एक अग्र देवे। ऐसी तीन गाठकी
जिनोपवीत ब्राह्मण धारण करे (इसका परमार्थ

रह है कि) जैनी ब्राह्मण श्रावक, नव ब्रह्मगुप्ति
युक्त, ज्ञान, दर्शन, चारित्र, रूप (३) रत्न आप
धारण करे अन्य पुरुषोको धारण करावे (तथा)
अन्य पुरुषोका जिनोपवीतादि धर्म्म धारण कर
नेको आज्ञा उपदेश करे। इस वास्ते (जैनी ब्रा
ह्मणके जिनोपवीतमे (३) ग्रथी कही (और क्ष
त्रीय वर्णके जिनोपवीतमे दोय गांठ होय (आप
धारण करे अन्यकों धारण करावे) परंतु आज्ञा
उपदेशका अधिकार क्षत्रीकों नही (अरु) वैश्य
के एक गाठकी जिनोपवीत होय. क्यों कि(नि के
वल) ज्ञान दर्शनकी भक्तीसें श्रावक आचार आप
धारण करे (परंतु) असामर्थ्य पणे सेंती ॥ अन्य
को धारण करानेका [वा] आज्ञा करानेका अ
धिकार नही (और सूद्राकों निःकेवल) ग्रंथी र
हित उतरासण रखनेकी आज्ञा है "किसवास्ते"
अज्ञानपणेसेती निसत्वपणेसेती अधमजाति

खसेती नि केवल भगवतकी आज्ञा प्रमाण करे
(परंतु) ज्ञान दर्शन चारित्ररूप रत्नत्रयी आप
भी धारन करनेको असमर्थ हैं, इस वास्ते
उत्तरासण धारन करनेकी आज्ञा है तथा अन्य
मतमें यज्ञोपवीतका प्रमाण युगोंके ऊपर कहा है
॥यथा॥ (कृते स्वर्णमय सूत्र) इत्यादि (जिनमतेतु
सर्वकाल जैन ब्राह्मण (तीन) लडी सोनेकी जि
नोपवीत धारन करे (असमर्थ होय तो) सूत्रादि
ककी धारणा करे, और क्षत्री वैश्य सूद्र सदा सू
त्रमयी जिनोपवीत धारन करे (यह जिनोपवीत
बनाने रखनेकी युक्ति कही) तिनमे तार सख्य
ऊपर जिनोपवीतका प्रमाण तथा ग्रंथी लगा
का प्रयोजन सूचन करा तैसे ही ज्ञान दर्शन चा
रित्रको यथीरूप थापना होनेसें लघुशकादिकक
ग्रंटादि करनेसें आशातना होय, तिस लिये ल
शकादिक वखत कानपर रखते हैं ॥६॥ इति प

न्शः प्रश्नोत्तरं सपुर्णं ॥१६॥२१॥

प्रश्न.—रावण राजाने तीर्थकर गोत्र कहा बां धा?॥१॥ और किस करणीसे?॥२॥ अरु कितने नव करेगा?॥३॥ और कोनसा क्षेत्रमे तीर्थंकर हो य मोक्ष जायगा ? ॥४॥१७॥

उत्तर.—त्रिषष्टीय तथा पद्मचरित्रमे तो राव एके नरसें लेके रावणका जीवक चउदमा भव मे तीर्थकरपणा कहा है, और नी उपदेश तरं गएयादिकमे श्रीनरत चक्रवर्त्तने केलास पर्वतके उपर सिद्धनिषद्या नामा मंदिर वनाया उसमे आगे होनेवाले त्रेवीस तोर्थकरो के और श्री रूपनदेव जीकि मिलकर चोवीस प्रतिमाकी स्थापना करी और मंमरत्नसें पर्वतकों असे छिला कि जिस ऊपर कोइ पुरुप पगोंसें न चढ सके उसमे आठ पद (पगथीए) रक्खे इसी वास्ते इन केलास पर्वतका दूसरा नाम अष्टापद कहते है. तवसे ही केलास

महादेवका पर्वत कहलाया "महादेव अर्थात् बडे
देव सो श्री ऋषभदेव तिसका स्थान केलास पर्वत
जानना तिस केलास अर्थात् श्रीअष्टापद पर्वतके
ऊपर रावण राजाने तीर्थंकर गोत्र बाधा ॥१॥ औ
र जिस करणीसे तीर्थंकर गोत्र बाधा वो करणीयह
है ॥ यदुक्त ॥ चन्द्रहासादि सस्त्राणि मुक्त्वासा
न्त पुर स्वयम् ॥ अर्हतामृषभादीना पूजा सोष्ट
विधाव्य धात् ॥१६६॥ समाकृष्य स्नसातन्त्री भ
मृज्पचदशानन ॥ महासाहसिको भक्त्या भुजवी
णा मवादयत् ॥ १६७ ॥ उपवीण यतिग्राम राग
रम्य दशानने गायत्यन्त पुरश्चास्य सप्तस्वरमनो
मम् ॥ १६८ ॥ पुन श्री उपदेशतरगण्यादौ अव
चि ॥ श्री रावणेन अष्टापदाद्रौ श्री भरतेश्वरक
रित वर्ण प्रमाणो पेत चतुर्विंशति जिन प्रासादे च
पनादि महापूजा विधाय मदोदरी प्रभृति षोडश
सहस्रांत पुरिभि सम नाट्यं क्रियमाणं स्ववीण

तंत्री त्रटिता तदा जिनगुण गानरंग नंग भीरुणा
स्वनसामाकृष्य सविता तदा जिन भक्त्या तीर्थ
कृगोत्र कर्म उपार्जित महाविदेह क्षेत्रे तीर्थंकरोच
विष्यति ॥ इत्यादि श्री अर्हद्भक्तिरूप करणीके प्र
भावसे रावण राजाने तीर्थंकर गोत्र बधन करा ॥
॥१॥ अथ रावण राज्ञ नव संख्या लिख्यते ॥ देश
ान्ते क्षमयित्वा सोतेन्द्रेण प्रणम्यच सौमित्रि रा
णगतिं पृष्टो रामर्षिरभ्यधात् ३० अधूनानरकेतु
र्ध सशम्बूको दशाननः लक्ष्मणश्चास्ति गतय. क
धीनाहि देहिनाम् ॥ ३१॥ नरकायुश्चानू नूयंतौ
शानन लक्ष्मणौ नगर्यां विजयावत्यां प्राग्विदेहे
वनूपणे ॥३२॥ सुनन्दरोहिणी पुत्रौ जिनदास सु
र्शनौ नविष्यतो अर्हद्धर्मञ्च सततंपालयिष्यत
३३। ततो विपद्य सौधर्मे त्रिदशौतौ नविष्यतः च्यु
वाच विजयापुर्यांश्रावकौ नाविनोपुन।३४। ततो
मृत्वा पुरुषौ नि[illegible] तौचावसान

मासाद्य देवलोक गमिर्ष्यत "॥३५॥ च्युत्वाच वि
जय पुर्य्यां जयकान्त जयप्रनौ कुमारवार्न्तराट् ल
क्ष्योस्तौ कुमारौ नविष्यता३६।जिनोक्त संयमंतत्र
पालयित्वा विपद्यच गीर्वाणौ लान्तके कल्पे भवि
ष्येत ज्नावपि ॥३७॥ तदात्व मच्युताच्युत्वा क्षेत्रे
चात्रैव नारते सर्व रत्नमति नाम चक्रवर्ति नविष्य
सि ॥३८॥ च्युत्वा तौ नाविना विन्ध्रा युधमेघरथा
निधौ सुतौ तेरत परिव्रज्य वैजयन्ते व्रजिष्यसि ॥
३९॥इन्द्रायुध मतु जीरो रावणस्य नवत्रयम् शुन
भ्रात्वा तीर्थकर गोत्रकर्म जंयिष्यति ॥४०॥ ततो
रावण जीव स तीर्थनाथो नविष्यति वैजयन्त
च्युतस्तस्य नावीगणधरो नवान् ॥ ४१ ॥ तत
स्तौयास्यतौ मोक्ष सजीरो लक्ष्मणास्यतु नवत्सूः
मेघरथो व्रजिष्यति गति शुना ॥४२॥ ततश्च पुष्
रद्वीपे प्राग्विदेह विभूषणे नगर्य्यां रत्नचित्राय
चक्रवर्त्ति नविष्यति ॥४३॥ चक्रवर्तिश्रिय भुक्त्

परिव्रज्य क्रमेणच सतीर्थनाथो नविता निर्वाणंच प्रपत्स्यते ।४४। इन श्लोकोंमे रावण लक्ष्मण चतुर्थ नरकसे नीकलके प्राग्विदेह विजयावती नगरीमे सुनद राजा और रोहणीकापुत्र जिनदास।१।सुदर्शन २नामसे होगा अरु दोनु श्रावक मनुष्य नवमे अर्ह धर्म आरायके ( १ ) सोधर्मदेवलोकमें देव होगे, वहां देव नव नोगव के ( २ ) फेर विजयपुरि नगरीमें श्रावक कुलमे मनुष्यनव (३) नोगवके हरिवर्ष क्षेत्रमे दोनु युगलिक मनुष्य नव (४) का अंतरकरके दोनु देवलोकमे देवका नव (५) पाके अंतमे चवके विजय नगरीमें कुमारार्त्त राजाकील क्ष्मी राणीके पूत्र जयप्रन ॥१॥ जयकीर्ति नामे ।२। जिनोक्त संयमसें मनुष्यनव (६) सफल करके दो नु लांतक नामा उठा स्वर्गमें देव नवका ॥७॥ ए कांत सुख नोगवके दक्षणार्द्ध नरतमे शांतेंद्रका जीव सर्व रत्नमति नामे चक्रवर्त्तिके पुत्र इंद्रायुध

मासाद्य देवलोक गमिष्यतः ॥३५॥ च्युत्वाच वि
जय पुर्य्यां जयकान्त जयप्रभो कुमारवर्न्सराद्
क्ष्म्योस्तौ कुमारौ भविष्यतः॥३६॥जिनोक्त संयमतत्र
पालयित्वा त्रिपद्यच गीर्वाणौ लान्तके कल्पे भवि
ष्येत उभावपि ॥३७॥ तदात्व मच्युताच्च्युत्वा क्षे
चात्रैव भारते सर्वे रत्नमति र्नाम चक्रवर्ति भविष्य
सि ॥३८॥ च्युत्वातौ भाविना विन्द्रा युधमेवरथ
भिधौ सुतौ तेत्र परिव्रज्य वैजयन्ते व्रजिष्यसि
३९॥इन्द्रायुध सतु जीवो रावणस्य भवत्रयम् शुभ
भ्रात्वा तीर्थंकर गोत्रकर्मार्जयिष्यति ॥४०॥ तत
रावण जीव स तीर्थनाथो भविष्यति वैजयन्त
च्युतस्तस्य भावीगणधरो भवान् ॥ ४१ ॥ तत
स्तौयास्यतौ मोक्षं सजीरो लक्ष्मणास्यतु भवत्सू
मेघरथो व्रजिष्यति गति शुभा ॥४२॥ ततश्च पुष्क
रद्वीपे प्राग्विदेह विभूषणे नगर्य्यां रत्नचित्राय
चक्रवर्त्ति भविष्यति ॥४३॥ चक्रवर्तिश्रिय भुक्त्व

नव ॥२८॥ १ श्रीकांत श्रेष्ठी ।२। हिरण।३।सूकर
।४। हस्ती ५ महीप ६ वृषभ ।७। वानर ॥८॥ व्याघ्र
।९। वृक १० हस्तिभेद ११ संभूतिविजय विप्र १२
सनत्कुमार देवलोक १३ प्रजावसेंकुंदराजा १४ स
नत्कुमार देवलोक १५ रावण १६ चतुर्थ नरक ।
।१७ अर्हदास श्रेष्ठी अपर पर्याय जिनदास कुटवी॥
।१८ सुरर्म देवलोक १९ कुटंबी श्रावक २० हरिव
र्षि युगलिक २१ सोधर्म देवलोक २२ कुमारार्त्त
।राजपुत्र जयप्रभ नामे २३ लांतक देवलोक २४
ज्ञरथ अपर पर्याय इंद्रायुध २५ सोधर्म देवलोक
।२६ चक्रवर्ति २७ वैजयंत अनुत्तर सुर २८ तीर्थ
कर महाविदेह इति रावण नव ॥ अथ लक्ष्मण
नव २६॥ वसुदेव श्रेष्ठी १ हिरणवंध्याया २ सूक
र ३ गृहस्थी ४ महीप ५ वृषभ ६ वानर ७ व्याघ्र ८
क ९ हस्ती १० श्रीभूतिविप्र ११ त्रीजे देवलोक
१२ लक्ष्मण १३ चतुर्थ नरक १४ रूपचंदास अ

॥१॥ मेघरथ ॥२॥ नामे होंगा (८) तव सर्व रत्नम
ति नामे शीतेंद्रका जीव चारित्रपालके वेजयत वि
मानमे देव होगा तिस अवसरमे रावणका जीव
इन्द्रायुध नामा देवलोक वा मनुष्यका तीन शुन
नवमे तीर्थकर गोत्र निकाचित अर्जन करेगा,
पीछे तीर्थनाथ (१२) नवमें रावणका जीव हो
गा तिस अवसरमे शीतेंद्रका जीव विजयतसें चवके
रावण जीव तीर्थनाथके गणधर होके दोनु सिद्धि
वरेगा अरु लक्ष्मणका जीव मेघरथ नामे च
क्रवर्त्तिका पुत्र सर्व रत्नमति दिक्षा लेके
देवलोकका शुन सुख नोगवके पुष्करवर
द्वीपका पूर्व विदेहमें रत्नचित्रा नगरीमें च-
क्रवर्त्ति होके, अनुक्रमे प्रव्रज्या लेके तीर्थनाथ
होके मोक्षपद पामेगा तथा सम्यक्त प्राप्त्यनं
तर रावण लक्ष्मण सीताका नव पृथक् २ ग्रंथोंमे
इस मुजब हे वो लिखते है तहा प्रथम रावणका

चतरपातः)॥ सच्चंपिय 'संजमस्स उवरोहकारकं किं
चि नवत्तवं हिंसा सावज्ज संपउत्तं चेतविकहकारकं
अणत्थवाय कलहहारकं अणज्ज अववाय विवाय
संपउत्तं वेलवउज्ज धेज्ज बहूल निल्लज्ज लोयगरह
णिज्जं उदिठ उस्सुय अमुणियं अप्पणो थववणा
परेसुनिंदा नसिमेहावी णातसिधणो नसिपियध
म्मो नतंकुलिणो नसिदाणपत्ति नतंमिसूरो नसि
पडिरूवो नतंसिलठो नपंमिते नवहुस्सुतं नवियतं
तवस्सी णयाविपरलोग निच्छियमती सि सव्वका
ल जातिकुलरूवे वाहिरोगेणावाविजंहोइ वज्जणिउ
य्यो उवचारमतिकतंएवविहंतुसच्चपि न वत्तव
अर्थः—जोसाचहोयतोभी संयमचारित्रकुं अबा
धाउपजावेऐसी अल्पभाषाभी नबोलणा वो को
नस्वरूपनबोलणा बोहिकहेहैकि जीवघातादिपा
पालापसहित भाषानबोले यडक्त॥तेहव काणंकाणि
त्तिपम्ग पम्गंतिय ॥ वाहियंवाविरोगित्ति तेणचोरे

द्वादश प्रश्नोत्तर संपुर्णम् ॥

प्रश्न –प्रश्नव्याकर्ण सूत्रका ७ सप्तम् अ ध्ययनमें कहा वो पाठ ॥ अपणो सेठावणा परे निदानतसेमेहावि इत्यादि पाठमें कहा के, आपकी स्थापना पाठकी निंदा करे जिस्मे (१३) अ पावे इस्मे ऐसा कोनसा अधिक पाप है।(दोधक आप थापी परनिंदकी जिस्मे तेरा दोख॥दूजे सं देख लो जाने कदी न मिलसी मोख ॥ १॥ इदशे म् ॥१ए॥

उत्तर –आपकी स्थापना पाठकी निंदा जिस्मे (१३) अवगुण पावे इत्यादि दोधक सही जो प्रश्नकारकने बात लिखी सो बात प्रश्नव्या रणका सप्तमाध्ययनमें ॥ (अप्पणोठवणा निंदा नसिमेहावी) इत्यादि पाठमे नही है इस पाठमें तो सत्यनाषा होय तो नी संयमो तकारी नाषा न बोलणा एसा अभिप्राय है(

ण गौरवर्णादि रूप व्याधि कुष्टादि दुष्टरोगजोहो-
य सो वर्जनेयोग्य दोनुप्रकारद्रव्य नाव पुजा उपका
अतिक्रांत(इसविध पूर्वोक्तप्रकारसें सत्यवचननी-
नयोलणा तो असत्यतोनहिजबोलणा)इत्यादिप्र-
श्नव्याकरणकेपाठसें अपनेमुहसें अपनीस्तुतिकर
के परकीनिंदाकरे उसकुंमृषावादीकासंनवहे परंतु
आपथापी परनिंदकी ऐसाअर्थ इसपाठसें संनवन
हीहोताहे क्योंकि टीकाकारनेनी (आत्मनःस्तव-
नास्तुति परेसुनिंदा गर्हानिन्दामेवाह) इत्यादिअर्थ
कराहै तिसलीये दोघकका करताहीज आपथापी
परनिंदकी संनवहोताहे क्योंकि पूर्वापरविचाररही
अपनीमतीकल्पनासें सूत्रोका अर्थकरके जोप्रा
जिनवचनविपरीत अपनीमनमानीवातस्थाप

तिनोवए ॥ १ ॥ इत्यादि ॥ तथा चारित्रादिने
कारि विकथा स्त्री भक्त राज देशादिककीकथाकी क
रनेवाला कार्यविनावोलेकलहकारीवचनवोले अ
नार्य अन्याय अपवादवचन परनिंदासहित विवा
वचन विटवना वलघृष्टपणे लज्यारहित (वचन
श्रेमाके) लोकनिंदे हीले, असम्यकदृष्ट देखा
असम्यकदृष्ट श्रवणकरा असम्यकजाणाअपनी
स्तुति परकीनिंदा गर्हा करणा अर्थात् अपनी आ
त्मासें अपनीस्तुतिकरे वा अपनी स्तुतिकराणेके
लीये पारकीनिंदा किसीरीतसें करेसोकहेहै कि यह
तोवुद्धिवतनही सहीतुधनकालेनेवाला नहींतुंप्रि
यधर्मी नहीतुंनिर्मलकुलजातीका नहितुंदानका
दातार नहितुसूर नहीतुंरूपवत नहीतुसोभाग्यवंत
नहीतुपन्डित नहीतु वहुश्रुत नहीतुतपस्वी (नही
तुंपरलोकके विषे) गतागती निश्चयकारणी नि.श्रं
समतिवत सर्वकालअजिन्मलगें मातृपक्ष पिताप

नीकरे ? ॥३॥ बहुरी आपगोचरीजायकेनहीं॥४॥ नोनहीजायतोदोषक्या ॥ ५ ॥ जायतोपूर्वेकोणग- पा ?॥६॥ इनप्रश्नोकाउत्तर पंचागीसेंकहणा।२०।
उत्तरः॥श्रीभगवतीसूत्रमे असापाठहैकि॥तेणं कालेणं तेणंसमयेणं समणेभगवंमहावीरे वियट्ट- भोइआविहोत्था ॥ इहां (वियट्टभोइ) शब्दका ऐसाअर्थहैकि। (व्यावृत्तेसूर्येभुंक्ते इत्येवंशीलो व्यावृत्तभोजी प्रतिदिनभोजीत्यर्थः।) इत्यादिअक्षरोंसें दिनदिनप्रति कवलाहारकेवलीकरे असासिद्धहे प- रंकेवलीतपस्याकरे असाकोइभी जैनसिद्धांतोमे नई तातें केवलीतपस्याकरेनहीं ॥ १ ॥ नहीं

कहलाताहै उत्सपुरुषमे तेराअवगुणतोक्यापण अने
कअवगुणपावेहेक्योंके वोपरुपअभिनिवेशमिथ्या
त्वकाधणीहे अरु अभिनिवेश मिथ्यात्वकेउदयसे
मरीची जमालीप्रमुखने संसारकीवृद्धीकरीतो अ
न्यपुरुष अनतससारवृद्धीकरे इसमेंआश्चर्यनही
कारणके जोपुरुष अभिनिवेशमिथ्यात्वीहोगा
अवश्यउत्सूत्रभाषीहोगा और उत्सूत्रभाषनका जै
नसिद्धांतोमें महापापकहाहै इसवास्ते आपथापी
परनिंदकीकुं उत्सूत्रभाषनरुप महापा ८
तथाचदोधक आपथापी परनिंदकी उत्सूत्रभाषी
जाण जैनसिद्धांतेदेखलो वोनलहेमोक्षसुवाण।
॥१॥इत्यादिज्ञेयम्॥ इतिएकोनविंशतीतम प्रश्नो
त्तरंसपूर्णम्॥१९॥

---

प्रश्न॰ ॥ केवलीतपस्याकरेकेनही ? ॥१॥ ज
नहीकरेतोकारणक्या?औरकरेतोजघन्यउत्कृष्ट

नीकरे ? ॥३॥ वहुरी आपगोचरीजायकेनही॥४॥
जोनहीजायतोदोषक्या ॥ ५ ॥ जायतोपूर्वेकोणग-
या ?॥६॥ इनप्रश्नोकाउत्तर पंचागीसेंकहणा ।२०।
उत्तरः॥श्रीभगवतीसूत्रमे ऐसापाठहेकि॥तेणं
कालेणं तेणंसमयेणं समणेभगवंमहावीरे वियट्ट-
भोइआविहोत्था ॥ इहां (वियट्टभोइ) शब्दका ऐ-
साअर्थहेकि । (व्यावृत्तेसूर्येभुंक्ते इत्येवंशीलो व्या-
वृत्तभोजी प्रतिदिनभोजीत्यर्थः।) इत्यादिअक्षरोसें
दिनदिनप्रति कवलाहारकेवलीकरे ऐसासिद्धहे प-
रंतुकेवलीतपस्याकरे ऐसाकोइभी जैनसिद्धांतोमे
कहानही तातें केवलीतपस्याकरेनही ॥ १ ॥ नही
करेइसकाकारणयहहेकि, जोतपस्याकरणीहे सो
कर्मक्षयकरणेकेलियेकरणीहे और केवलीमहारा-
जकेतो चारघनघातिकर्मतो क्षयहोगएहेअरू चार
अघातीभवोपग्राहीकर्म जीर्णकपडेतुल्यरहगयेहे
वोआयू कर्मके साथ क्षय होतेहे औरजो आयूकर्म-

कहलाताहै उसपुरुषमे तेराअवगुणतोक्यापण अ
कअवगुणपावेहेक्योंके वोपरुषअभिनिवेशमिथ्या
त्वकाधणीहे अरु अभिनिवेश मिथ्यात्वकेउदयसे
मरीची जमालीप्रमुखने संसारकीवृद्धीकरीतो अ
न्यपुरुष अनंतससारवृद्धीकरे इसमेंआश्चर्यनही
कारणके जोपुरुष अभिनिवेशमिथ्यात्वीहोगा
अवश्यउत्सूत्रनापीहोगा और उत्सूत्रभाषनका जै
नसिद्धांतोमें महापापकहाहै इसवास्ते आप
परनिंदकोकुं उत्सूत्रनाषनरूप महापा ८
तथाचबोधक आपथापी परनिंदकी उत्सूत्रनाषी
जाण जैनसिद्धांतेदेखलो वोनलहेमोक्षसुवाण।
॥१॥इत्यादिज्ञेयम्॥ इतिएकोनविंशतीतम प्र
श्नसंपूर्णम्॥१९॥

---

प्रश्न ॥ केवलीतपस्याकरेकेनही ? ॥१॥ ज
नहीकरेतोकारणक्या? जेकरेतोजघन्यउत्कृष्ट

युक्त होय तातें गोचरी जायज नही अरू और सामान्य केवली शिष्यादि समुदाय होय तहां तक गोचरी न जाय परं शिष्यादि अभावे गोचरी जाय (यतोऽवाचि व्यवहारभाष्यादौ॥) उप्पन्ननाणजह ओ अमंति चोत्तीस बुद्धाइसयाजिणादा ॥ एवंग- णी अठगणोववेत्त सभावनोहिमइइड्ढिमंतु ॥ १ ॥ इत्यादि जैन सिद्धांतोमे आचार्यादिककुंभी शिष्या देवते गोचरीकानिषेधहेतो उत्पन्न ज्ञान तीर्थकर- वा केवलीके तो अर्थात् निषेध हुवा ॥ ४ ॥ अथ वा शिष्यादिवते केवली प्रमुख ऋद्धिवतकुं गोच- रीजानेसें शासन शिष्यादि अपभ्राजना अविन- यादी अनेक दोषकी उत्पत्ति होय ॥ तथाचोक्तं स्थानाग वृत्ति व्यवहारभाष्यादौ ॥ भारेणवेदणावा हिमतेठवनीयसासोवा ॥ आइण छडणाई (प्रचु- रपनकादेरापानादी वर्यादयो) गेलणेपोरिसीभंगो- ति एवमादयोऽनेकेदोषा. व्यवहार भाष्योक्ताः स-

सें अधिक अघातीकर्म होय तो तिनोके क्षयकेलिये समुद्घात करके क्षय करतेहें वोसमुद्घात आठ समयका होताहे और तपस्यातो असंख्यात समय बादर अंतर्मुहुर्त्तसे न्यून होती नही है तिसवास्ते केवलीके कोनसा कर्म क्षय करणा हे सो तपस्या करे। अर्थात् कोइभी कर्मक्षय करणा केवली महाराजके रहा नही तिस कारणसें तपास्या न करे ॥ २ ॥ तथा केवली महाराजके तपस्याका अधिकार होय तो जघन्य उत्कृष्टका मान होय पण (धामोनास्तिकुत सीम) इसन्यायसें तपस्याकाही अधिकार नही तो जघन्य उत्कृष्टका मानकी कल्पनाही व्यर्थकर्णीहे तथा तीर्थंकरादि केवलीयोंके अंतअवसरमे पक्षमासादिनक छेद कहाहे सोतो जिन केवलीके आहारके पुद्गललेणे बाकी न रहा होय, वो करे अन्यथा न करे ॥ ३ ॥ अरु तीर्थंकर केवली तो निश्चे गणधरादि समवायस

ुक्त होय तातें गोचरी जायज नही अरू और सामान्य केवली शिष्यादि समुदाय होय तहां तक गोचरी न जाय परं शिष्यादि अनावे गोचरी जाय (यतोऽवाचि व्यवहारभाष्यादौ॥) उप्पन्ननाणजह ओ अमंति चोत्तीस वुद्धाइसयाजिणादा ॥ एवंगणी अगणोववेत्तु सम्नावनोहिमइइद्धिमंतु ॥ १ ॥ इत्यादि जैन सिद्धांतोमे आचार्यादिककुनी शिष्यादिगते गोचरीकानिषेधहेतो उत्पन्न ज्ञान तीर्थंकरवा केवलीके तो अर्थात् निषेध हुवा ॥ ४ ॥ अथ वा शिष्यादिगते केवली प्रमुख ऋद्धिवन्तकुं गोचरीजानेसे शासन शिष्यादि अपभ्राजना अविनयादी अनेक दोषकी उत्पत्ति होय ॥ तथाचोक्तं स्थानांग वृत्ति व्यवहारभाष्यादौ ॥ भारेणवेदणावा हिंमतेचञ्चनीयसासोवा ॥ आइण छडणाई (प्रचुरपनकादेरापानादी व्यादयो) गेलऐपोरिसीभंगोत्ति एवमादयोऽनेकेदोषाः व्यवहार भाष्योक्ता. स-

भवसेया एते च सामान्य साधोरपि समाना स्त थापि गच्छतर्थिस्यवा महोपकारित्वेन रक्षणीयत्वेन आचार्यस्य अतिसय उक्ता उक्तच ॥ जेणकुलंआ यत्तं तपुरिस आयरेणरखिज्जा नहुतुवंमि विणडे अरया साहारयाहिजति ॥ १ ॥ अर्थात् छद्मस्थ साधुठते केवली गोचरीजायतो छद्मस्तोंके दिल मे अनेक तरहके आहार विहारादि व्यवहारमे चारित्र नगके सकल्प विकल्पादि अनेक दोष होय क्योंके केवलीतो केवल व्यवहारसें अपने ज्ञानमे ग्रहण करणेका जिसीके घर देखा होय उसीके घर जाके आहार ग्रहण करे पण साधुकी तरह आव प्रकारकी पतंगादि करे तब अगीतार्थ अज्ञलोकोंकु शंका उत्पन्न हो के इन साधुकुं गोचरीकी रीतीभी, मालुम न है तथा केवलज्ञानकी मालुम होय तो जैनमे महान् पुरुषोका विनयकी भी प्रतिपत्ति न

हे जो इनोके साधु हे वो तो गोचरी नही जाते हे ने इनमहान्पुरुषकुं गोचरीकुं जाने देते हे अरू जो छद्मस्थकीनांइ गोचरी करे तो केवलज्ञानमें आ-वर्णादि दोपकी शंका होय और फेर असीनी आ शंका होय के छद्मस्थ साधुवोके आहारादि ग्रहण करणेमे निर्दोषपणाका अनावहे तातें केवली आप गोचरी जाते हे पण छद्मस्थकुं गोचरी नही जानेदे ते हे तिसलीये छद्मस्थपणेमे आहारादि निर्दोषका अनावहेतो चारीत्रकानी अनावहे इत्यादि व्यव हार मार्गमे अनेक दोपकी आशंका होय इसी वास्तेहीज आवश्यकादि जैनसिध्धांतोमे लिखा हेकि जो छद्मस्थ साधु व्यवहार शुध्दिसें आहार ग्रहण करा होय ने केवलीके ज्ञानमे अशुध्द होय तोनी केवलज्ञानी वो आहार आप करलेवे पण इसी आहारकुं अशुध्द कहे नही अरुजो अशुध्द कहेतो व्यवहार मार्गका लुप्तपणा होय इत्यादि

अनेक दोषोत्पत्तिकारणसें छद्मस्थ साधु छते केव
ली माहाराज गोचरी जाय नही ॥ ५ ॥ अथवा
(पाडिहारिय पीढ फलग सिद्या संथारग पच्चि
णिझ्जा) इतिप्रज्ञापना सूत्रोक्त अन्नीप्रायर्से केव
ली माहाराजपीढफलगादि गृहस्थके घर जाके
देवे असा सिद्धहे तो छद्मस्थ साधुउंके अना
लानेकानी अर्थात् सिद्धहे अरु जो पीढफल
लाणेका सिद्धहेतो छद्मस्थ साधुवोंके
आहारादिक अर्थे गोचरी जानानी सिद्धहे
गोचरीजाना अर्थात् सिद्धहेतो आवश्यकादि
निर्युक्ति प्रमुख प्रथमानुयोगमे पूर्वे पुष्फचूला प्र
ख केवली गोचरी गये असा जैनसिद्धांतोमे प्र
द्ध है इतिविशतितम प्रश्नोत्तरं सपुर्णम्॥ २१॥

---

प्रश्न ॥ द्वादशांगी जैनवाणीमे आ
चीके १८००० पद कहे सो जघन्य पदहेके

पदहे केत्तरूप्त पदहे?वा श्लोकांतहेके विन्नक्त्यंतहेके समासांतपद हे फेरपन्नवणाजीके ३६ पदकहेसो वेकोनसे है ओर स्तवनादिकमे पदकहेसोकेसें उर पदशब्दका क्या अर्थ और पदके कितने अक्षर होय ओर सज्ञा अक्षर व्यंजना अक्षर लब्ध्यक्षर इनशब्दोका अर्थ क्या ओर अक्षर शब्दका अर्थ क्या हे ने अक्षरके अनंतमे नाग ज्ञानहे निगोदके जीवमे सो कोनसा अक्षर ये भिन्न २कहना ?॥२१॥

उत्तरः ॥ पद्यतेगम्यते ज्ञायते अर्थो अने नेतिपद ॥ जाणिये जाकरके अर्थ, वा द्रव्यादिप- ार्थ वो पदकहावे यह्रपदशब्दका सामान्यार्थहे।१। ोपद तीन प्रकारकेहे एकतो संज्ञापद ॥ १ ॥ दूस ा सुवंततिडत विन्नक्त्यत पद ॥ २ ॥ तीसरा ुमासादिवाक्यांत पद ॥ ३ ॥ इनतीन पदोमे प्रथम ंज्ञा पद हे सो चार प्रकारकाहे एकतो व्यंजनप ़ाय पद ॥ १ ॥ दूसरा अक्षर संख्या पद ॥ २ ॥

अनेक दोषोत्पत्तिकारणसें छद्मस्थ साधु छते केव
ली माहाराज गोचरी जाय नही ॥ ५ ॥
(पाडिहारिय पीढ फलग सिद्या संथारग पच
णिइज्जा) इतिप्रज्ञापना सूत्रोक्त अजीप्रायसें
ली माहाराजपीठफलगादि गृहस्थके घर जाके
देवे औसा सिद्धहे तो छद्मस्थ साधुवोंके अभाव
लानेकाजी अर्थात् सिद्धहे अरु जो पीठफल
लाणेका सिद्धहेतो छद्मस्थ साधुवोंके
आहारादिक अर्थे गोचरी जानाजी सिद्धहे
गोचरीजाना अर्थात् सिद्धहेतो आवश्यकादि
निर्युक्ति प्रमुख प्रथमानुयोगमे पूर्वे पुष्फचूला प्र
ख केवली गोचरी गये औसा जैनसिद्धांतोमे प्रसि
द्ध है इतिविंशतितम प्रश्नोत्तरं सपुर्णाम् ॥ २१ ॥

---

प्रश्न ॥ द्वादशांगी जैनवाणीमे आ
जीके १८००० पद कहे सो जघन्य पदहेके

पदहे केवलरूप पदहे?वा श्लोकांतहेके विभक्त्यंतहेके
समासांतपद हें फेरपन्नवणाजीके ३६ पदकहेसो
येकोनसे हे ओर स्तवनादिकमे पदकहेसोकेसें ॥र
पदशब्दका क्या अर्थ ओर पदके कितने अक्षर
होय ओर सज्ञा अक्षर व्यंजना अक्षर लब्ध्यक्षर
इनशब्दोका अर्थ क्या ओर अक्षर शब्दका अर्थ
क्या हे ने अक्षरके अनंतमे नाग ज्ञानहे निगोदके
जीवमे सो कोनसा अक्षर से जिन्न२कहना ?॥२१॥

उत्तरः ॥ पद्यतेगम्यते ज्ञायते अर्थो अने
नेतिपदं ॥ जाणियें जाकरके अर्थ, वा द्रव्यादिप-
र्थ वो पदकहावे यहपदशब्दका सामान्यार्थहे।१।
पद तीन प्रकारकेहे एकतो संज्ञापद ॥ १ ॥ दूस
सुबंततिङत विनक्त्यत्त पद ॥ २ ॥ तीसरा
मासादिवाक्यांत पद ॥ ३ ॥ इनतीन पदोमे प्रथम
ज्ञा पद हे सो चार प्रकारकाहे एकतो व्यंजनप
मि पद ॥ १ ॥ दूसरा अक्षर संख्या पद ॥ २ ॥

तीसरा श्लोकाक्षर सख्यां पंद ॥ ३ ॥ यत्रार्थोपल
ब्धिस्तत्पदं इतिअनुयोगद्वारवृत्यादि वचनते तथा
चोथा सूत्रार्थ परिसमाप्ति पद ॥ ४ ॥ तहा अकार
ककारादि भिन्न भिन्न अक्षर सयोगसें भिन्न १
अर्थका वाचकहोके जहा अथ पूर्ण होय तितना
अक्षरका समुह व्यजनपर्याय पद कहावे ॥ १ ॥
दूसरा आठ अक्षरकी सख्याका एक पदवो अ
र संख्यापद कहावे ॥ २ ॥ तीसरा
बत्तीस अक्षर प्रमाणे सख्या होयवो श्लोक स
क्षर पदकहावे ॥ ३ ॥ चोथा जिसअर्थाधि
उद्देस किया उस अर्थाधिकारकी समाप्ति य
वो सूत्रार्थ परिसमाप्ति पदकहावे ॥ ४ ॥
श्रीनंदीसूत्रकी वृत्तिचूर्णीमें पदका ऐसाअर्थकरा
(तथाचतत्पाठ ॥ पदचात्र उपसर्गिकं निपा
कं नामकं आख्यातिक मिश्रं अथवेहपदं
पकरूप गृह्यते ततस्तथारूपपदापेक्षया

द सहस्त्राणिनवंति॥नतुलक्षाणि इत्यादिजैनसि
द्धातोंमे विचित्रप्रकारसेपदका स्वरूपकहा,तहां आ
चारांगादिद्वादशागीके अष्टादशसहस्त्रादी स्थानदो
गुणे पद श्री जैनसिध्दातोंमे कहेहे वोपद मध्यम सं
ख्यापदहे पण उत्कृष्ट संख्यापद नहीहे क्योंके शी
र्षप्रहलिकातरासी अर्थात् १९४॥ संख्याकरा सीतो
यतोबहूतरासी अतिक्रम्य होतीहे वो उत्कृष्ट
सख्याता कहलाताहे तातें आगममे जहां तहां
समुच्चयरूप संख्या ग्रहण कीइगइहे वोसबअजघ
न्योत्कृष्ट अर्थात् मध्यम सख्या जाननी क्योंके
तिसे लेके उत्कृष्ट बीचमे जो संख्या हे वो अजघ
न्योत्कृष्ट कहलातिहे इसीवास्ते द्वादशांगरूप जि
नवाणीमे आचारांगादि ॥ ११ ॥ अंगके तो तीन
कोम ॥६७॥ लाख ॥४६॥ हजार पद होतेहै अरू
चतुर्दश पूर्वका नीचे प्रमाणे भिन्न२ पद जाणणा.
तहां प्रथम उत्पाद पूर्वका एककोम पद ॥१॥ दू

सरा आग्रायणीय पूर्वका ॥९६॥ लाख पद ॥२॥
तीसरा वीर्यप्रवाद पूर्वका ७० लाख पद ॥ ३॥
चोथा अस्तिनास्ति प्रवाद पूर्वका ॥ ६० ॥ लाख
पाचमा ज्ञानप्रवाद पूर्वका एक कोडी अधिक
पद ॥५॥ छगासत्य प्रवाद पूर्वका एक कोडी ॥६॰
अधिक पद ॥६॥ सातमा आत्मप्रवाद पूर्वका
२६॥ कोम पद ॥७॥ आठमा कर्मप्रवाद पूर्वका
कक्रोम ॥८०॥ हजार पद ॥८॥ नवमा प्रत्या॰
प्रवाद पूर्वका ॥८४॥ लाख पद ॥९॥ दशमा वि
नुप्रवाद पूर्वका एक क्रोम ॥१०॥ लाख पद ।१
इग्यारमा अवध्यनामा पूर्वका २६ क्रोड पद ।११
बारमा प्रणायु पूर्वका एकक्रोड ॥ ५६ ॥ ला
पद ॥१२॥ तेरमा क्रियाविशाल पूर्वका नव को
पद ॥१३॥ चतुर्दशम लोकाबिंडसार पूर्वका सा
बाराक्रोम पद ॥१४॥इत्यादि नंदीसूत्र वृत्यादि ऊ
संख्या॥तथा रत्नसारादि ग्रंथांतरोंमें द्वादशागीके

दोंकी संख्या इसमुजबहै तत्पाठः॥कोटिसत द्वादश
श्चैव कोटयो लक्षाण्यसीतित्वधिका निश्चैव ॥ पंचा
सदष्टौच सहश्र संख्यामेतत्श्रुत सर्व पदं नमा
मि ॥ १ ॥ यह पद संख्या वारमा अंगकी व
स्तू तथा पूर्वोका पदकी संख्या सहीत संभवे
है और इन द्वादशांगीके पदोमें विभक्त्यादि पूर्वो
सर्व पदोका संभव है परंतु वोसव अवांतर पद
भवीत हैं और जो पदोका प्रमाण किया गयाहैवो
त्रार्थ समाप्ति तत्पदं इसी वचनसे जो तीर्थक
ने अर्थ कहावो वीवीक्षित समयमें गणधरोने
र्थ समाप्ति यावत् सूत्र रचा वितना सूत्रार्थ समा
तेका पद कहावे उस पदका परिमाण अक्षर सं
या पदसें श्लोक सख्याक्षर सख्यासें संभवितहै
तथाचोक्त श्री प्रथमानुयोग गाथा ॥ एकावन्न
डीउ लक्खा अठेव सहस्सचुलसीहिं सयछक्कं
यअद्धा सवेएकस्सपयगंथा ॥ १॥५१ ॥ क्रोड ८

लाख ८४॥ हजार ठसें ॥ ५० ॥ इतना श्लोकोंसं
ख्याका एकपद होता है इस मुजब सर्व द्वादशां
गीके पदोंकी सख्या जाणणी॥२॥ और पन्नवण
ठाणाइं इत्यादि द्वार गाथामें जो पन्नवणाजीमे
३६॥पद गणाए हे,वो पदनी सूत्रार्थ परिसमाप्ति
सख्यासे सन्नवित हे क्यों के जीव प्रज्ञापना =
प्रज्ञापनाका उद्देशक परि समाप्ति करके
समाप्ति कराहे तैसेंही और ॥३६॥ पद नी ज
ना ॥३॥ अरू स्तवनादिकमे जो ध्रुपदादी राग
गणी वध दो चार गाथा प्रतिवध स्तवना हे वो
ये पद कहेलाते हैं अने उपराग तथा देशी
चार उपरात गाथा प्रतिवध स्तवना होय वो प्रा
स्तवन कहलाता है यह स्तवनादिक पद कहे
ते हैं वो रागरागणी प्रमुख नामसें सज्ञा पद क
जाते हैं ॥४॥ तथा वर्णछद अरू मात्राछंदमें जि
जिस छंदका छद शास्त्रमे वर्ण गण मात्राका

पदमे प्रमाण किया होय उसी प्रमाणे एक पदके
अक्षरकी सख्या होय ॥५॥ तथा संज्ञाक्षर ॥१॥
व्यजनाक्षर २ लब्ध्यक्षर ३ इन तीनका अर्थ या स्वरूप
श्री नंदीसूत्रादि सिद्धांत वृत्तिमें इस मुजब कहा हे
तत्पाठः॥ सेकिंतं सन्नक्खर ॥२॥ अक्खरस्स सठा
णागिइसन्नक्खरं जन्नणंबन्नीलिवीपवत्तइ एवंलि
ए अठारसविहेलक्खण विहाणे पन्नत्ते तंजहा वं
ी जमणालिवा दासपुरिया उत्तरक्खरा अक्खर
ढिया पोक्खरसरिया पहराइया न्नेणवइया वेणु
इया णेणइया अकलिवी गणियालिवी आयंस
वी गधयलिवी कामिली माहेसरी पोलिंदी से
सन्नक्खर सेकिंतं वंजणक्खरं वजणक्खरं अक्खर
स वजणा निलावो वंजणक्खरं तंदीह रहस्सं पु
त तजहा अणुक्त दंसवह लालवसविय विविदियं
णुणासिय सेतवजणक्खरं सेंकितंलद्धिअक्खरं
लद्धिअक्खरं अक्खरलद्धियस्स लद्धिअक्खर समु-

प्पज्जइ तपंचविह पन्नत्तं संजहा सोइंदियलद्धिस्करं
चक्खुंदियलद्धिस्करं घाणिंदियलद्धिस्कर रसणिंदि
यलद्धिस्कर फासिंदियलद्धिस्कर नोइंदियलद्धिस्कर
सेतलद्धिस्कर ॥व्याख्या॥ अथकिंततसंज्ञाक्खरं॥श्र
अक्षरस्याकारादे सस्थानाकृति संस्थानाकार स्त
थाहि सज्ञायतेऽनयेतिसज्ञानमेतन्निबंधनं तत्का
णमक्षरं संज्ञाक्षर सज्ञायाश्चनिबन्धनमाकृति वि
प एवंनामकरणात् व्यवहरणाच्च ततोऽक्षरस्य प
ट्टिकादौ सस्थापितस्य सस्थानाकृति सज्ञाक्षर
च्यते तच्चब्राह्म्यादिलिपिभेदतोऽनेकप्रकार तत्रन
गरीलिपिमधिकृत्य किञ्चिप्रदर्श्यते मध्येस्प
ठितचुल्ली संनिवेशसदृशीरेखा सन्निवेशेण करो
कीभूतश्च पुच्छसंनिवेश सदृशो ढकार इत्यादि से
मित्यादि तदेतत्संज्ञाक्षर श्रथकिंतत्
श्राचार्यश्चाह व्यजनाभिनाप तथाहि
नार्थःप्रदीपेनेवघट इतिव्यजनं

देकं वर्णजातं तस्यविवक्षितार्थाभि व्यंजकत्वात्
व्यजनच तदक्षरञ्च व्यंजनाक्षरं ततोयुक्तमुक्तं
व्यंजनाक्षरमक्षरस्य व्यजनाभिलापः अक्षरस्य
कारादेर्वर्णजातस्य व्यजनेनाभ्रभावे अनद्व्यं
कत्वेनाभिलापःउच्चारणं अर्थव्यंजकत्वेनोच्चार्य
ाणमकारादि वर्णजातमित्यर्थः सेकिंतमित्यादि
थकिंतत् लब्ध्यक्षरं लब्धिरूपयोगतःसचेहप्रस्ता
ात् शब्दार्थ पर्यालोचनानुसारीगृह्यतेलब्धिरूप
क्षरं लब्ध्यक्षर भावश्रुतमित्यर्थ अक्षरलब्धियस्से
ादिअक्षरेअक्षरस्योच्चारणावगमेवा लब्धिर्यस्यलो
क्षरलब्धिकस्तस्य अकाराद्यक्षरानुविद्धश्रुतलब्धि
वमन्वितस्येत्यर्थः लब्ध्यक्षरं भावश्रुतं समुत्पद्यते
ब्दादिग्रहण समनन्तरमिन्द्रियमनो निमित्तंश
ब्दार्थ पर्यालोचनानुशारिशंखो यमित्याद्यक्षरानु
विद्धं विज्ञानमुपजायते इत्यर्थ नन्विदंलब्ध्यक्षरं स
ञ्ज्ञिनामेव पुरुषादीनामुपपद्यते नासंज्ञिनामेकेन्द्रि

कं वर्णजातं तस्यविवक्षितार्थोनि व्यंजकत्वात्
यंजनच तदक्षरञ्च व्यंजनाक्षरं ततोयुक्तमुक्तं
व्यंजनाक्षरमक्षरस्य व्यजनाभिलापः अक्षरस्य
अकारादेर्वर्णजातस्य व्यंजनेनात्रभावे अनट् व्यं
जकत्वेनाभिलापःउच्चारणं अर्थव्यजकत्वेनोच्चार्य
माणमकारादि वर्णजातमित्यर्थः सेकिंतमित्यादि
अथकिंतत् लब्ध्यक्षरं लब्धिरूपयोगतःसचेहप्रस्ता
वात् शब्दार्थ पर्यालोचनानुसारीगृह्यतेलब्धिरुप
क्षरं लब्ध्यक्षरं भावश्रुतमित्यर्थ॰ अखरलब्धियस्से
त्यादिअक्षरेअक्षरस्योच्चारणावगमेवा लब्धिर्यस्यसो
क्षरलब्धिकस्तस्य अकाराद्यक्षरानुविद्धश्रुतलब्धि
समन्वितस्येत्यर्थ॰ लब्ध्यक्षरं भावश्रुतं समुत्पद्यते
शब्दादिग्रहण समनन्तरमिन्द्रियमनो निमित्तंश
ब्दार्थ पर्यालोचनानुशारिशंखो यमित्याद्यक्षरानु
विद्धं विज्ञानमुपजायते इत्यर्थ नन्विदंलब्ध्यक्षरं सं
ज्ञिनामेव पुरुषादीनामुपपद्यते नासज्ञिनामेकेन्द्रि॰

यादीना तेपामकारादीनां वर्णानामवगमे ऊचार
णोवा लब्ध्यसनवाश्चितेपा परोपदेश श्रवणं सन
वति येनाकारादिवर्णानामवगमादिभवेदथचैकेन्द्रि
यादीनामपिलब्ध्यक्षरमिष्यते तथाहि पार्थिवादी
नामपि नावश्रुतमुपवर्ण्यते दव्वसुयाभावमिवि ना
वसूयं पच्चिवाईणामिति वचनप्रामाण्यात् नावश्रु
त चशब्दार्थ पर्यालोचनानुसारि विज्ञान शब्दार्थ
पर्यालोचन चाक्षर मन्तरेण ननवतीति सत्यमेतत
किंतुयद्यपि तेषामेकेन्द्रियादीना परोपदेश श्रवण
सनवस्तेपा तथा विधक्षयोपशम नावत कश्चि
दव्यक्तोक्षरलानोनवति यन्शादक्षरानु व्यक्त श्रुत
ज्ञानमुपजायते इत्त्चैतदङ्गीकर्त्तव्य तथाहि तेपा
म्याहाराद्यनिलाप ऊपजायतेनिलापश्चप्रार्थन
साचयदीदमह प्राप्नोमि ततोनव्य नवतीत्याद्य
रानुविद्धैव ततस्तेपामपि काचिदव्यक्ताक्षरलाभ
रवश्यप्रतिपत्तव्या ततस्तेपामपि लब्ध्यक्षर सन्न

तीतिनकश्चिद्दोपः तर्चलब्ध्यक्षरं पोढातद्यथा श्रोत्रे
न्द्रियलब्ध्यक्षरमित्यादि इहयत श्रोत्रेन्द्रियेणश
ब्द श्रवणेसति शाखोयमित्याद्यक्षरानुविद्धं शब्दा
र्थप्रयोजनानुसारि विज्ञानं ततश्रोत्रेन्द्रियलब्ध्यक्ष
रं तस्यश्रोत्रेन्द्रिय निमित्तत्वात् यत्पुनश्चक्षुपा आ
म्रफलाद्युपलभ्याम्रफलमित्याद्यक्षरानुविद्ध शब्दा
र्थ पर्यालोचनात्मकं विज्ञानं ततश्चक्षुरिन्द्रिय लब्ध्य
क्षर एवशेषेन्द्रियलब्ध्यक्षरमपिभावनीयं ॥

भावार्थ'–जिसकरकेजाणीयें वो संज्ञाकहावे ति
सका कारण जो संज्ञाकरकेवांचिआकृतिविशेष जोप
ट्टिकादिकमे अक्षरपंक्ति वोसज्ञाक्षरकहावे वो ब्राह्मी
लिपीआदि अठारप्रकारकाहै अरूदेशीलिपि आ
श्रीदेखे तवतो अनेकप्रकारकाहे यह भावश्रुतकाका
रण द्रव्यश्रुतकहलाताहै॥ इति संज्ञाक्षर॥१॥ अर्थ
काव्यजककहीये वोधक वो व्यंजनाक्षर अर्थात्
अकारादिक अक्षरका उच्चारकुं व्यंजनाक्षरकहणा

वोव्यजनाक्षर अनेकप्रकारकाहै यथाएकमात्राका
उच्चार वो ह्रस्व कहावे इत्यादिह्रस्व ॥१॥ दीर्घ २,
प्लुत ३ इत्यादिकभेद श्रीजिनेंद्रव्याकरणसें जा
णणा. यहभीद्रव्यश्रुतकहावे ॥ २ ॥ तथा अक्षर
उच्चारणेकी लब्धि अथवा अक्षरार्थ समजनेकी
लब्धिहोय वोलब्ध्यक्षर कहावे यह भावश्रुतकह
लाताहै ॥ ३ ॥ इहाकोइप्रश्नकरेके, सज्ञिपचेंद्रिय
पुरुषादिककुंतो मनोलब्धिसपूर्णहै तातें अक्षरका
उच्चार तथा अर्थका विचारकरणाघटे, पण एकें
यादिककुंनघटे क्योकि उनजीवोके परकाउ
दिसुणनेका अभावहे तातें उनकु अकारादिअक्षर
का अवगमनहीहोता अरु सिद्धातमेतो एकेंद्रिया
ककुभी लब्ध्यक्षरलक्षणभावश्रुतकहाहे वोकैसें
तहा आचार्य समाधान करतेहैकि, एकेंद्रि
जीवोकु परोपदेश श्रवणतो नही है, पण अव्यक्त
णे अक्षरार्थलाभहोताहै और उच्चार विगरतिन

विसृद्म द्रव्यसमर्पहै तिनकरके आहारादिक
ज्ञाहोतीहै अरु संज्ञानाम अभिलाषकाहै जो अमु
वस्तुप्राप्तहोयतोअछी ऐसा अभीलाषनो अक्षर
होतहै इसवास्ते लब्धक्षरश्रुत एकेंद्रियादिक
कलप्राणीगणकेंहै वो लब्धक्षरश्रुतषटप्रकारका
एकतोस्पर्शनेंद्रिय मृष्टकरकमादिस्पर्श पामके अ
रानुविछजो अर्कतूलादि दर्णवस्त्रादिकशब्दार्थ
कुविचारेवो स्पर्शनेंद्रिय लब्धक्षर श्रुत कहावे ।१।
दूसरा रसनाइंद्रियके वस्तुकासवाद लगेपीछे म
धुमयादिककुं जुलखे वो रसनेंद्रियलब्धक्षर कहा
वे ॥२॥ तीसरा घ्राणेंद्रिय चंपका शोकशब्दवाच्य
वस्तुका नामार्थ विचारे वो घ्राणेंद्रियलब्धक्षरकहावे
॥३॥ चोथाचक्षुइंद्रीय स्वेतपीतादिरूप शब्दवाच्य
वस्तुका नामार्थ विचारे वो चक्षुइंद्रियलब्धक्षर
कहावे ॥४॥ पांचमा श्रोत्रइंद्रियसे सब्दश्रवणकरी
शखादिककुंजाणे वो श्रोत्रेंद्रियलब्धक्षरकहावे ।५

उठा कोइकवस्तु मनमेविचारके उसकुंस्मरणकरे
अथवा पूनकलत्रादिककुं स्वरूप पूछे वो नोइं
द्रियलब्ध्यक्षर श्रुत कहावे ॥ ६॥४ ॥ तथा अक्षर
शब्दका अर्थयहहैकि (क्षर सचलने नक्षर तिन
चलतीत्यक्षर ज्ञानताद्धिजीवस्वनावादनुपयोगेपि
तस्वोनप्रच्यवेत्)॥ नावार्थ यहहैकि क्षरधातुसं
चलनअर्थमेहे ताते नक्षरे नचने वो अक्षर कह
वे अक्षरनामज्ञानकाहे वो ज्ञानहेसो निश्चे जीव
स्वनावहे तातें अनुपयोगमेंनी वो हानी न पामे जे
नीअविशेपकरके सर्वज्ञान अक्षर कहलाताहे तो
नीजिसज्ञानका प्रस्तावहोय वोहीज ज्ञान अक्ष
शब्दसे ग्रहणकरणा अर्थात् अक्षरनामज्ञानकाहे
ऐसानंदीसूत्रादिवृत्तिमेंकहाहे ॥ ५ ॥ अरू अक्ष
के अनतनागमत्यादि ज्ञान सवजीवोके उघाडा
उसअक्षरकी इस मुजवअवगाहनाहे कि सर्वद्रव्य
प्रदेशाग्रप्रति सर्वद्रव्यप्रदेशकरके अनंतगुणावि

येहुवे जितना परिमांण होय तितना परिमाण
एक व्यंजन अक्षरकाहोय अर्थात् एक व्यजन अ
क्षरके इतनेपर्याय होय वो सव पर्याय श्रुतकेवली
तथा केवलज्ञानीजाणेदेखे पण अन्य न जाणे न
देखे जोभी सर्वज्ञानावर्णादिकर्मकी अनंतवर्गणा
करके सबजीवका सर्व प्रदेशवीटेहुयेहैं तोभीचैत
न्यस्वभावकुं आवरण करसके नही क्योंके ज्ञाना
वरणीयादिक आठकर्मकी वर्गणाते एक अक्षरका
अनंतमभाग जीवकर्मसे उद्घाटितसदाहे तिसउप
रांत सवजीवकु कर्मनेवीटाहे जोअनंतमभागजीव
की ज्ञानावर्णीयप्रमुख आठकर्मोंसें आवरेतो वो जी
वस्वभावकुफिटके अजीवस्वभावकुंभजे इसवास्ते
अनंतानंतज्ञानावर्णादीकर्मपरमाणुकके एकैकआ
त्मप्रदेशआवेष्टित परिवेष्टित होय तोभी एकांतकर
केचैतन्यमात्रका अभावनहोय जैसेअति निवमतर
मेघसमूहसें आच्छादितहोयतोभी सूर्यचंद्रकी प्रभा

काएकालनाश न होय तैसें सर्व वस्तुकासर्वथा स्व
नाव मिटाणेकुनी कोइ समर्थ न होय तिसलिये
अक्षरजो श्रुतज्ञान अरूश्रुतज्ञानहे सो मतिज्ञान
अविनानावी तातेमति श्रुतज्ञानका अनंतमनाग
ज्ञान सबजीवोंकेरुचकप्रदेशे उघाडाहे सोनीअनंत
नाग अनेकविधहे तहा अक्षरका अनंतमनागक
नाम विनाग तथा पलिछेदअरूपर्यायएकार्थसो
नांश कहावे तिसमेज्ञानका एक अंशहे वोपर्याय
श्रुतकहावे सोपर्यायश्रुत लब्धि अपर्याप्तनिगोदक
सूक्ष्मजीवोंकेविषे सर्वजघन्य थोडामे थोडारह
ऐसा तत्वार्थवृत्तिप्रमुख नंद्यादिवृत्तिमें कहाहै त
निगोदका जीवमे जो अक्षरके अनंतमेना
कहाहै वो पर्यायश्रुत लब्ध्यक्षरके अनंतमे
संनवहे पीछैबहुश्रुतगीतार्थ कहे सो प्रमाण ॥
इतिएकविंशतिप्रश्नोत्तरम् सपूर्णम् ॥२१॥ ४।

प्रश्न —चोराशीलाखजीवाजोनीकही जिस्मे॥

लाखपृथ्वीकायकीहे सो ॥ ७ ॥ सातलाखकीगि
णतीकेसे ऐसे ॥ १४ लाख मनुष्यकी गणतीकेसें
इस्काअलग २ कहेणा ॥

उत्तरः—योनीशब्दका यह अर्थ है कि यु
मेश्रणे युधातुमिश्रण अर्थमेहे तातें ऐसा अर्थहोता
हेकि जीवज्ञवातरमे संक्रमेतब तैजसकार्मणशरीर
संतयका औदारिकादिशरीर योग्य पुद्गलकीसाथमि
श्रहोय वो योनीकहावे इहांकोइ कहेंगेके, अनंत जी
वोंके उत्पत्ति स्थानकभी अनंत चाहीये अथवा जी
वोंकि सामान्य आधारभूत जो असंख्यात्प्रदेशात्मक
लोकहेतो असंख्यातउत्पत्तिस्थानकभी जीवोके होय
ऐसा कहनाचाहियें,तिनकुं कहना क्योंके सर्वज्ञभग
वानने केवलदृष्टेकरीवहुतस्थानकपणवर्णादिकधर्म
करिसदृशजाणके उनकुं एक योनी कहेहे तिसकारण
सेंये अनंतजीवोकीपण चउरासीलाख योनीजा
ननी तथाचोक्तं श्री जैनसिद्धांते ॥ गाथा ॥ समव

होय अरु एक हजार साढी सातकी प्रत्येक कुल
कोटी ग्रहण कियेसें सर्व कुलकोटी बारा लाख
अंकतोपी १२००००० होय एव सब मिलके ए
क्रोम कोटी सत्ताणु लाख कोटी पचासहजार को
टी अर्थात् एकक्रोम साढीसत्ताणुलाख कुल कोटी
होय अंकतोपी ॥१९७५००००॥ इतनी कुलको
टीकी सख्या होय ॥ तथा सस्कृत कोटी शब्द
प्राकृतमे कोमी ऐसा शब्द होता है ताते केइ
आचार्य पूर्वोक्त कुल कोटीकी सख्याकु एक को
कोमी सत्ताणुलाख कोमी पचासहजार कोमी
सी रीतसें कुल कोटीकी सख्या बोलते है॥ अ
कोईक आचार्य कोमी शब्दकों क्रोमका वाचक
नके पूर्वोक्त सब मिलकर जितनी कुल कोटीका
ख होय सो प्रवचनसारोध्दारादिकमे इस रीतसे व
ते है ॥गाथा॥ एगाकोमा कोमी सत्ताणउइलक्खे
य सहस्सा पन्नासंच सहस्सा कुलकोडीण मुणे

॥८८१॥ अर्थ–एक कोडा कोडी सत्ताणुं शत सहस्त्र पचासहजार सर्व मिलके इतनी कुलकोडी होय ॥८८१॥ तथा सर्व संघका सम्मत आचार्य संघयण नामा पुस्तकमें तथा विशेषणवती टीका में श्री जिनभद्रगणी क्षमाश्रमण लिखते हैं कि, कोइक आचार्य कोटी शब्दकों एक क्रोडका वाचक नही मानते है. किंतु संज्ञातर मानते है. क्योंकि, अब वर्तमान समयमे भी वीशकों कोडी कहते है तथा सौराष्ट्रदेश अर्थात् सोरठदेशमे अबी वर्त्तमान कालमें भी पाच आनेकुं एक कोडी कहते है इह जैसें कोडी शब्दमें मतातर है ऐसेंही शत स हस्र शब्द भी किसी संज्ञाका वाचक होय तो कुछ दोष नही. ताते इहां पूर्वोक्त कुलकोडीका स ख्याक्रमे अठाणुआदी तथा एक क्रोडकुतो कोडा कोडी ऐसी संज्ञातर मानते हैं अरु सतसहस्त्रकुं कोडीकी संज्ञातर मानके पूर्वोक्त सब कुलकोटी

होय अरू एक हजार साढी सातकी प्रत्येक
कोटी ग्रहण कियेसें सर्व कुल कोटी बारा ल
अकतोपी १२००००० होय एव सब मिलके ए
क्रोम कोटी सत्ताणु लाख कोटी पचासहजार
टी अर्थात् एकक्रोम साढीसत्ताणुलाख कुल को
होय अकतोपी ॥१९७५००००॥ इतनी कुल
टीकी सख्या होय ॥ तथा सस्कृत कोटी शब्द
प्राकृतमे कोमी अैसा शब्द होता है ताते के
आचार्य पूर्वोक्त कुल कोटीकी सख्याकु एक को
कोमी सत्ताणुलाख कोमी पचासहजार कोमी
सी रीतसें कुल कोटीकी सख्या बोलते है॥
कोईक आचार्य कोमी शब्दको क्रोमका वाचक
नके पूर्वोक्त सब मिलकर जितनी कुल कोटी
होय सो प्रवचनसारोद्धारादिकमे इस रीतसे
है ॥गाथा॥ एगाकोमा कोमी सत्ताणउइ
सहस्सा पन्नासच सहस्सा कुल कोडी

॥७८१॥ अर्थः—एक कोमा कोमी सत्ताणुं शत सहस्र पचासहजार सर्वे मिलके इतनी कुलकोडी होय ॥७८१॥ तथा सर्व संघका सम्मत आचार्य संग्रहणी नामा पुस्तकमें तथा विशेपणवती टीका में श्री जिनभद्रगणी क्षमाश्रमण लिखते है कि, कोइक आचार्य कोटी शब्दकों एक क्रोडका वाचक नही मानते है किंतु सङ्ञातर मानते हे क्योंकि, अब वर्त्तमान समयमे भी वीशकों कोडी कहते है तथा सौराष्ट्रदेश अर्थात् सोरठदेशमे अबी वर्त्त मान कालमें भी पाच आनेकु एक कोडी कहते हे यह जेसें कोडी शब्दमें मतातर हे असेही शत सहस्र शब्द भी किसी सङ्ञाका वाचक होय तो कब दोष नही तातें इहा पूर्वोक्त कुलकोडीका संख्याकमे अठाणुआदी तथा एक क्रोडकुतो कोडा कोडी ऐसी सङ्ञातर मानते हे अरू शतसहस्रकुं कोडीकी सङ्ञातर मानके पूर्वोक्त सब कुलकोटी

कोष्टागा काष्टतकृका वर्द्धकिन इत्यर्थ• वोकशालि
या तन्तवाया• कियन्तोवा वक्ष्यन्त इत्युपसंहरति
अन्यतरेषुवा तथा प्रकारेष्व जुगुप्सितेषु कुलेषु
नाना देश विनेयसुख प्रतिपत्यर्थं पर्यायान्तरो
दर्शयत्यग्राह्येषु यदिवा जुगुप्सितानि चर्म्मकार
दी निगर्ह्याणि दास्यादिकुलानि विपर्ययभूते
लभ्यमानमाहारादिकप्रासुकमेषणीयमिति म
नोगृह्णीयादिति जापा॥अर्थ जस कुलमे साधु नि
कों लिये प्रवेश करे वो कुल कहे है ॥ वो निक्षु चा
वत भिक्षाके अर्थ ऐसा कुल जाणके प्रवेश
वो कुलयहे है कि श्रीऋषभदेवस्वामीने आर
पदवीमें स्थापन किये वा उग्रकुल कहावे ॥१॥ त
श्रीआदीश्वर स्वामीने राजाके पुज्यस्थानमे
पन करे वो जोगकुल कहावे ॥ २ ॥ और
स्थानमे स्थापन किये वो राजन्यकुल कहावे ॥
अरू धान्यादिकं जमाके लेनेवाले जमींदार रागो

कि वो क्षत्रिय कुल कहावे ॥४॥ अथवा श्रीऋष
भदेव स्वामीके वंशके वो इक्ष्वाक कुल कहावे ॥५॥
पुनःहरि नाम युगलिक पुरुष विशेपका (वंशजो)
पुत्रपोत्रादि परंपरा वो (हरिवंश) तिस लक्षण ल
क्षित जो कुल वो हरिवंश कुल तथा श्री अरिष्ट
नेमीनाथ स्वामीका वंश जात जो(जादवादिक) वो
हरिवंश कुल कहावे॥६॥ तथा गोष्ट गोपाल जो गो-
वालियोंका कुल वो (एसिय)कुल कहावे॥७॥और
वणिक जो वेपारके करणेवाले जोकुल वो (वैश्य)
कुल कहावे॥८॥अरू नापित जो ग्रामोद्घोषक कुल
वो (गंमाक) कुल कहावे ॥९॥ फेर काष्ट घटनादी
कलाकारक वार्द्धिकादिक वो (कोट्टीग) कुल कहावे
॥१०॥तैसेंही कोटपालादिकोंका कुल वो (ग्रामरक्षक)
कुल कहावे ॥११॥ ततुवाय जो पट्टकुलादि रेसमी
काम करे वो (वोकशालिय) कुल कहावे ॥१२॥
इत्यादि औरभी तथा प्रकारके अजुगुप्सित अग

कोट्टागा काष्टतक्षका वर्द्धकिन इत्यर्थ वोकशा
या तन्तवाया कियन्तोवा वक्ष्यन्त इत्युपसहर
अन्यतरेपुवा तथा प्रकारेष्व जुगुप्सितेपु कुले
नाना देश विनेयसुख प्रतिपत्यर्थ पर्यायान्तरे
दर्शयत्ययाह्येपु यदिवा जुगुप्सितानि चर्म्मकारकु
दीनिगर्ह्याणि दास्यादिकुलानि विपर्ययभूतेपुकुले
लभ्यमानमाह।रादिकप्रासुकमेपणीयमिति मन्या
नोगृह्णीयादिति चापा॥अर्वाजस कुलमेसाधु नि
केभिये प्रवेश करे वो कुल कहे हैं ॥ वा भिक्षु चा
वत भिक्षाके अर्थ ऐसा कुल जाणके प्रवेश
वो कुलयहे हैं कि श्रीऋषभदेवस्वामीने आरद
पदवीमें स्थापन किये वो उग्रकुल कहावे ॥१॥ त
श्रीआदीश्वर स्वामीने राजाके पुज्यस्थानमे
पन करे वो भोगकुल कहावे ॥ २ ॥ और मि
स्थानमे स्थापन किये वो राजन्यकुल कहावे ॥
अरु धान्यादिके जमाके लेनेवाले जमीदार राठो

क वो क्षत्रिय कुल कहावे ॥४॥ अथवा श्रीऋष
देव स्वामीके वंशके वो इक्ष्वाक कुल कहावे ॥५॥
:हरि:नाम युगलिक पुरुष विशेषका (वंशजो)
पौत्रादि परंपरा वो (हरिवंश) तिस लक्षण ल
न जो कुल वो हरिवंश कुल तथा श्री अरिष्ट
मीनाथ स्वामीका वंश जात जो(जादवादिक) वो
रिवश कुल कहावे॥६॥ तथा गोष्ट गोपाल जो गो-
लियोंका कुल वो (एसिय)कुल कहावे॥७॥और
णिक जो वेपारके करणेवाले जो कुल वो (वैश्य)
ल कहावे॥८॥अरू नापित जो ग्रामोद्घोषक कुल
ो (गंमाक) कुल कहावे ॥९॥ फेर काष्ट घटनादी
लाकारक वार्द्धिकादिक वो (कोट्टींग) कुल कहावे
१०॥तैसेंही कोटपालादिकोंका कुल वो (ग्रामरक्षक)
ुल कहावे ॥११॥ ततुवाय जो पट्टकुलादि रेसमी
ाम करे वो (वोकशालिय) कुल कहावे ॥१२॥
त्यादि औरभी तथा प्रकारके अजुगुप्सित अग

हिंत कुलोंकेविषे तहां जुगुप्सितजो चरमकार अर्थात्
चमारादिकोंके कुल और गर्हित जो दास्यादिकोंके
कुल आदि शब्दसें जन्म मरणादि सूतकके
वा सूतकके कार्य करणेवाले कुल तिनोंसें
जूत जो पूर्वोक्त प्रकारसें अन्यभी कोइ कुल जो कि
सीके घर गमन करते कोइ दुगछा निंदा गर्हा
नही ऐसे अदुगछित अगार्हत कुलोंके विषे आ
एसणीय अशनादिक प्राप्त हुयेथके साधु ग्रहण करे
पण जिनोंके जात पाणी लेते लोक दुगंछा करे
तिनके घर द्रव्य क्षेत्र काल भाव देखे विना आहा
रादी लेवे तो तिनोंके माथे तीर्थकरोंकी आज्ञा नं
रूप दंमका प्रहार पमे ॥ तथा पूर्वोक्त द्वादश कुलों
गोपाल जो अहीरादिक कुल ॥१॥ अरू गमाक जं
नापितादी कुल ॥२॥ और वर्द्धकादि जो सु
दिकोका कुल ॥३॥ अथवा ततुवाय जो ही...
वणणेवालोंका कुल ॥४॥ यह चारोंही उत्तम कुल

ग्रवर माहाराजजीनें ग्रहण किये है, पण डगंछ
नीय कुल ग्रहण नही किये है; क्योंकि गोपाल कुल
दो प्रकारका है एकतो राजाशेठ सेनापतीयोंकी गा
यांकु रखवालनेवाले अरू दूसरे घोसी प्रमुख अप
नी घरकी गायोंका दही दूध वेचके आजीवकाके
करनेवाले तहां राजा शेठ सेनापती प्रमुखके गोपाल
क्षत्रियादी उत्तम जातके महर्द्धिक होय जैसे देवकी
जीके दायजेमे दीये हुवे नंद यशोदा गोपाल तिनो
मुहआगें अन्य जो गायोंकें गोवाल वो सूतकादी
योंकी सारसंभालके करनेवाले होय है उन मह
द्धिकोंके घर साधु आहारादि लेवे, परंतु सूतका
दीकर्मके टालनेवाले न होय ऐसे डगंछनीय घोसी
प्रमुखोंकें कुलमे साधु आहारादी न लेवे॥१॥ अरू
नाक जो नापितादी कुलनी दो प्रकारके है एक
तो हस्तीस्कंधके ऊपर बेठके ग्राममे उद्घोषणा करे
ण सूतकादी कर्म करे नही और दूसरा क्षुरमुंडादी

सूतक कर्मके करनेवाले॥१॥ तहा उद्घोषणा करने
वाले गंधाक नापितके उत्तम कुलमे साधु निक्षा
लेवे, पण सूतकादि कर्म करनेवाले नापित कुलमें
जिक्षा न लेवे ऐसेही वार्द्धिक सुथारादी कुलभी
दोप्रकारके है एकतो सूतकादी करमके टालनेवाले
अडुगंछनीय वनणीये सुथार प्रमुख तथा दूसरे
सुतकादि कर्मके नही टालनेवाले डुगंछनीय सु
सुथारादि प्रमुख तहा अडुगंछनीय वार्द्धिकादि कु
लका आहार साधु लेवे, पण डुगछनीय वार्द्धिक
दि कुलका आहार न लेवे॥२॥तैसेही ततुवाय कु
भी दो प्रकारके है एक तो उत्तम कुलके हीर
हादि रेसमके कामके करनेवाले पटुवा प्रमु
अरू दूसरे सुइ जातके वणकर प्रमुख तहा सु
जाती वर्जके उत्तम कुलके तंतुवायोंके कुलमे सा
आहारादी ग्रहण करे ॥४॥ तथा पूर्वोक्त द्वाद
कुलमें सुवर्णहारका कुल ग्रहण नही किया तो

री॥ अन्नयरे अडगंछनीय कुले ॥ इत्यादि सूत्रका
के वचनसें सुवर्णकार जो सुवर्ण सुध्दि करनेवाले
गुर्नरदेश प्रसिध्द सोनी वनीयोंका कुल अथ
वा सूतकादी कर्मके वर्जनेवाले सूद्रजाती विव
र्जित सुवर्णादिक घाटके घडनेवाले जो लोकोमे
जनवे सोनार कहलातें हैं तिनोके कुलमे भी
जो साधु आहार लेवे तो हरजा नहीं. क्योंके यह
कुल सूत्र न्यायसें डगंछनीय नहीं है अडगंछनीय
उत्तम कुलहीज है ॥३॥ और इहां ॥ जयादि
पुत्र पौत्रादि वशानां गणो कुलं ॥ अत्र जय भी
जयादिकोंका पुत्र पौत्रादिक तो वंश कहावे अरू
तिन वंशोंका समुह वो कुल कहावे इहा कुल
शब्दका ए अर्थ हे ॥४॥ इति चतुर्विंशतितम प्रश्नो
त्तरं संपूर्णम् ॥२४॥२५॥

---

प्रश्नः—चैत्य शब्दका प्रतिमाका हीज अर्थ

करते हो सो क्या ? अन्यं अर्थ नही होय ? बहुरि स
मवायांगसूत्रमें॥२४॥ चैत्यरुख कहे यत्पाठः॥ चौ
वीसचैत्यरुरकापन्नत्ता ॥ तथोत्तराध्ययने ॥ चेइ
मीमणोरमे ॥ इत्यादिपाठका प्रतिमा अर्थ कैसे
करणा ? ॥२५॥

उत्तर —चैत्य शब्दका तीन अर्थ होता है
तथा हि अनेकार्थसंग्रहे चैत्यजिनोकस्तद्बिंबं चै
त्योजिनसभातरू ॥ अर्थ ॥ चैत्य के० ॥ जिनका
घर अर्थात् जिनमंदिर ॥ १ ॥ अथवा जिनबिंब
अर्थात् जिनप्रतिमा ॥ २ ॥ और जिन सभाका
वृक्ष अर्थात् समवसरणस्थ अशोकतरू ॥ ३ ॥
न तीन अर्थ उपरात चैत्य शब्दका अर्थ मुख्यपणे
और कोइ भी होता नहीं हे क्योंके व्याकर्णद्वारा
तो शब्दका अनेक अर्थ होते हैं पण शब्दको
तथा सिद्धांतोंमें जो अर्थ मुख्यपणे ग्रहण किया
होय वोहीज अर्थ प्रवृत्तिमें ग्रहण होता हे तातें

जैसें जैनशव्दकोषमें चैत्य शव्दका अर्थ चैत्य तथा जिनायतन ग्रहण किया है तैसेही अन्यमतके शव्दकोश अमरकोशादिकमें जी चैत्य शव्दके दो अर्थ ग्रहण किये है. तथा हि॥ चैत्यं आयतनं द्वे यज्ञायतन नेदस्य अर्थात् यज्ञस्थान वा पूजास्थानकुं चैत्य वा आयतन यह दो नाम करके बतलाना कहा है. तथा उद्याने देवगेहेच हि चैत्यमुदाहृत ॥ इत्यादि कोइक अनेकार्थ कोशमे उद्यान तथा वृक्षका नाम चैत्य कहके बतलाया है. सो जी कोइ देव तथा कोइ देवकी स्थापनाके आश्रयमे उद्यान तथा वृक्ष होय उस उद्यान तथा वृक्षकुं चैत्य नामसे बतलाया जाता है जेसें श्री जगवती प्रमुख जैन सिद्धातोमें गुणसिलबागकु गुणसिलेचेइए ॥ ऐसा कहके बतलाया सो उस बागमें गुणसिलनामायक्षका आयतन अर्थात मिंदर था तातें गणधर माहाराजनें गुण

सिल चैत्य कहके बतलाया है. ऐसें ही पूर्णनद्र
दि चैत्य नी जानना अरू कोइ देवकी स्थापना
रहीत उद्यान तथा वृक्ष होय तिनोकु बहुत जैन सि.
धातोमें गणधर माहाराजजीने उद्यान तथा वन
खम अरू वृक्षकु रुंखादि पर्याय कहके बतलाये
है परतु चैत्य कहके नहीं बतलाये है तिस लिये
कोइ उद्यानादिकमे तथा वृक्ष नीचे कोइ देवकी
सद्भूत तथा असद्भूत स्थापना होय वहा हीज
चैत्य शब्द वपराया जाता है इस वास्ते स्थापना
वोही उस देवकी सद्भूत असद्भूत प्रतिमा गि
जाती है तातें चैत्यशब्दका अर्थ प्रतिमाका
होता है अन्य अर्थ नहीं होता है ॥१॥ तथा
हीं श्री समवायागसूत्रमे नी वड पीठवृक्ष अ
पूजनीक वृक्षोके नीचे चउवीस जिनकु
ज्ञान उत्पन्न नया तिस लिये तिन ॥२४॥
चैत्य कहके बतलाये है॥ तथाच तत्पाठ एए।

बत्तीसाए तित्थगराणं चेइयस्कातोत्था
तंजहाणिग्गोह सत्तिवणे साले पियए पियंगु छताए
सिरिसेयणागरुक्के मालीयपिलुकस्केय ॥ ३३ ॥
तेंडूनपाम्ननजंबु आसत्थेखलनहे वदहिवणे णंदी
स्केतिलए अवगरुक्केअसोगेय ॥३४॥ चंपयवच्च
नतहा वेतसिरुक्केय ग्रायईरुक्के सालेय वद्धमाणे
चेइस्काजिणवराण ॥३५॥ बत्तिसाइधणुइ चेइ
रस्कोय वद्धमाणस्स णिच्चोअगाअसोगो उन्नणो
सालस्केणं ॥३६॥ तिणेवगाउआइं चइयरुक्को
भगास्सउसन्नस्स सेसाणंपुणरुक्का सरीरउवारस्स
णाउ ॥३७॥ सच्छत्तासपडागा सवेइयातोरणेहि
उवेया सुरअसुरगरुलमहिया चेइयरुक्काजिणव
राण ॥ ३८ ॥ व्याख्या ॥ चेइयरुक्केत्ति बद्धपीठवृ
क्षायेषामध केवलान्युत्पन्नानीति वत्तीसाइयणाय
साहा निच्चोउगोत्ति नोत्यसर्वदाऋतुरेव पुष्पादि
कालोयस्यसनित्यर्तुक. असोगोत्ति अशोकाभिधा

सहीत चैत्यवृक्ष॥३॥ तीन छत्र सहीत धजासहीत वेदिका सहीत तोरण संयुक्त सुर वैमानिकदेव असुरन्नवनपत्यादिक गरुल सुवर्णादिक देवो करके पूजित असो जिनेन्द्रोंका चैत्यवृक्ष जाणणा ॥३०॥ इहा श्री समवायागजीके पाठमें जिस वृक्षके नीचे चोवीस तीर्थकरोकु केवलज्ञानकि उत्पत्ति नइ तिस वृक्ष कु श्री गणधर महाराजने चैत्य कहके वतलाया सो वक्ष्पीव छत्रादि चिन्होसें श्री तीर्थंकर देवके ज्ञानोत्पत्ति स्थापनाके आश्रयसें वतलायें है पण नि केवल ज्ञानके आश्रयसें नही वतलाये हे क्योंके जहा तहा जैन सिद्धातोमे स्थापनाके आश्रयसे वृक्षोकु चैत्यवृक्ष कहके वतलाये है परतु स्थापनाके आश्रय विना वतलाये नही है तैसेही कहा है श्री ठाणाग सूत्र तत्पाठ. ॥ तिहि ठाणेहिं देवाण चेइयरुस्का चलेजा तजहा अरहतेहिं जायमाणेहि जावतचेव ॥ न

था ॥ चैत्यवृक्षाये सुधर्म्मादिसन्नानां प्रतिद्वारं
रतो मुखमंमप प्रेक्ष्यमंमप चैत्यस्तूप चैत्यवृ
महाध्वजादिक्रमत श्रूयन्ते ॥ नावार्थ. ॥ चैत्य
क्षजो सुधर्म्मादि सनाउंका प्रतिद्वार दीठ आगे
खममप उर प्रेक्षामकप तथा चैत्यस्तूपके आगे
त्यवृक्ष महाध्वजादिक क्रमते सिध्दांतोमे सुणी
है, वो देव चैत्यवृक्ष कहावे सो अरिहंतोका ज
मादि तीन ठेकाणे चलायमान होय. इहा साश्वत
नचैत्यस्तूप रूप सन्नाव स्थापनाके आगे रहे वृक्षो
चैत्य कहके बतलाये तैसे ही मिहिलाएचेइ
॥ तथा चेइयमी मणोरमे ॥ इत्यादि श्रीउत्तरा
ययनके पाठमे नी साधुचित्यंचित्यमेव चेत्यमुया
॥१॥ तथा चेइयमितिचितिरिहेष्टकाचयस्तत्र
धूर्योग्योवाचित्य सएवचैत्यस्तास्मिन्कोर्यो अ
बद्धपीठिकोपरिचोच्छ्रितपताके मनोरमे मनो
र तस्मिनृक्ष इतिशेषः ॥ इत्यादि सूत्रवृत्तिका

हाथीकी सेनाके हाथीतो ८४ हजार सख्यासें ग्रह
ण करे अरू ८४ लाख घोडेकु शतसहस्र संख्यासे
ग्रहण करेतो अकेक हाथीके पीछे १०० सो
घोडाकी सख्या आवे इस संज्ञासे भी ८४ लाख
हाथी ८४ लाख घोडासे सोभा पामे ऐसे ही वासु
देव प्रमुखकी सेनाके हाथीकी सोभा भी जाननी
परतु जेसे कुलकोटीकी सज्ञामे जिनभद्रगणीक्ष
माश्रमण साक्षी है, तेसें चक्रवर्त्तादिककी सेना
की सख्या इस संज्ञासें ग्रहण करणेकी आज्ञा
कोइ जेनशास्त्रोमे नही है तैसे कोइ पूर्वाचार्य
साक्षी भी नही है इस वास्ते पूर्वाचार्योका वचन
साक्षीलेख आधार विना पूर्वाचार्योका वचन वि
रोधके अपने मन मानी कल्पना सत्य करनेव
तेर गेरकी संज्ञा ओर गेर लगाके अपनी मनमा
नी वात सिद्ध करना ऐसी मेरी श्रद्धा नही है, क्यों
के अपने मनमानी कल्पनासें कुछ जैनमतके

वात सत्य नही हो शकर्ता है जैनमतकी वाततो अपणे स्वरूपसे ही सत्य वनेगा जेकर मनमानी कल्पना ही सत्यका कारण होवे तवतो किसी पूर्वाचार्योंकी अपेक्षा न रहेगी, तवतो जिसके मनमे जो अर्थ तथा संज्ञा अच्छा लगे, सो अर्थ तथा सज्ञा कर लेवेगा तो जैनमार्गकी अनवस्था हो जायगी ताते पूर्वोक्त शतसहस्रादिककी सज्ञासें जम्बुद्वीप पन्नत्यादि जैन सिध्धांतोमे तथा प्रथमानुयोगमे चक्रवर्त्यादिककी रूध्दि तथा सेनाकी संख्या कही वोहीज सत्य हे लेकीन वर्त्तमान कालमे हय गय बरावर सभवे नही और सोभे नी नही ऐसी आशंका करनी व्यर्थ हे क्योंकि वर्त्तमानकालमें विना सेनासे नी हाथीयोंका जुद्ध सोभता है तो बरावर सेना सहीत हाथीयोंका जुद्ध सोभे इस्मे आश्चर्य नही हे तो पूर्वनरेंद्रादिकोके नी सर्व सिणगार युक्त ८४ लाख हाथीयोका युद्धके पीछे

हाथीकी सेनाके हाथीतो ८४ हजार सख्यासें ग्रह
ण करे अरू ८४ लाख घोडेकु शतसहस्र सख्यासें
ग्रहण करेतो अकेक हाथीके पीछे १०० सो
घोडाकी सख्या आवे इस सज्ञासे नी ८४ लाख
हाथी ८४ लाख घोडासे सोना पामे ऐसे ही वासु
वेव प्रमुखकी सेनाके हाथीकी सोना नी जाननी
परतु जेसे कुलकोटीकी सज्ञामे जिनभद्रगणीद्द
माश्रमण साक्षी हे, तैसें चक्रवर्त्तादिककी सेना
की सख्या इस संज्ञासें ग्रहण करणेकी आज्ञा
कोइ जैनशास्त्रोमे नही हे तैसे कोइ पूर्वाचार्य
शाक्षी नी नही हे इस वास्ते पूर्वाचार्योका वचन
साक्षीलेख आधार विना पूर्वाचार्योका वचन वि
रोधके अपने मन मानी कल्पना सत्य करनेकु
उर गोरकी संज्ञा ओर गोर लगाके अपनी मनमा
नी वात सिद्ध करना ऐसी मेरी श्रद्धा नही हे, क्यो
के अपने मनमानी कल्पनासें कुछ जैनमतकी

वात सत्य नहीं हो शकती है जैनमतकी वाततो अपणे स्वरूपसे ही सत्य वनेगा जेकर मनमानी कल्पना ही सत्यका कारण होवे तवतो किसी पूर्वाचार्योंकी अपेक्षा न रहेगी, तवतो जिसके मनमे जो अर्थ तथा सज्ञा अच्छा लगे, सो अर्थ तथा सज्ञा कर लेवेगा तो जैनमार्गकी अनवस्था हो जायगी ताते पूर्वोक्त शतसहस्रादिककी सज्ञासें जवुद्वीप पन्नत्यादि जैन सिध्दातोमे तथा प्रथमानुयोगमे चक्रवर्त्यादिककी ऋध्दि तथा सेनाकी संख्या कही वो हीज सत्य हे लेकीन वर्त्तमान कालमे हय गय वरावर सभवे नहीं औंर सोभे भी नहीं ऐसी आशका करनी व्यर्थ हे क्योंकि वर्त्तमानकालमें विना सेनासे भी हाथीयोंका जुद्ध सोभता है तो वरावर सेना सहीत हाथीयोंका जुद्ध सोभे इसमे आश्चर्य नहीं हे तो पूर्वनरेंद्रादिकोंके भी सर्व सिणगार युक्त ८४ लाख हाथीयोका युद्धके पीठे

सर्व सिणगारयुक्त चोरासी लाख घोड़ाका युद्ध चलनेसे कोनसी सोन्नाकी हानीहोतीहे शो ऐसी आशका करतेहो ॥ किंवहु लिखनेन बुद्धिवर्येषु ॥ इतिअष्टाविंशतितम प्रश्नोत्तर सपूर्णम् ॥२८॥

---

प्रश्न –भाद्रपदशुक्लपचमिका महातम्य क्ये साहेके १२ ही मासमें कोइतिथीका नही और व सदिन साधु श्रावककुं अन्न जलनी लेणा नहीं फिर १२ ही मासका लेग निवर्तन नही करे तो सम्यक्त रहे नही और साध साध्वीको भद्र होणा जो नहीं होवे तो प्रायश्चित लग सो ये अपमंग लीकपणा केसें कहा? और इसकों अन्यमतवाले ऋषीपञ्चमी मानतेहे सो इसका एसा क्या माहात्म पणा? ॥ २९॥

उत्तर –श्रीमहानिशीथादि जैन सिद्धांतोमे चार अतिशय धारी एकावतारी दोहजार अरु

चार जंगम जुगप्रधान कहे तिनमे श्रीस्यामाचा
र्य अर्थात् कालिकाचार्य तैसेहि महाप्रभाविक यु
गप्रधान हुये तिनके पूर्वेतो वार्षिक पर्व अर्थात्
महामगलीक पर्वपर्वोत्तम श्रीपर्यूषणापर्व भाद्रपद
शुक्लपञ्चमीका होताथा अरू श्रीकालकाचार्यके॥
अतरावियसेकप्पइ ॥ अर्थात् भाद्रपद शुक्लपञ्च
मीकेउरेतो पर्यूषणा वार्षिकपर्वकरनाकल्पे पण पं
चमीपीछे नकल्पे इत्यादी श्रीदशाश्रुतस्कधका
अष्टम अध्ययनकेवचनसें श्रीकालकाचार्यजीने
कारण भावसे भाद्रपदशुक्लचतुर्थीका वार्षिक पर्यू
षणापर्व स्थापन करे पीछे उस वखतके वर्तमान
जैनाचार्य सब एकठे होके विचार कियाके श्रीयु
गप्रधानके वचनसे सर्व सघमे चतुर्थिका वार्षिकपर्व
प्रसिद्ध हुवा तो अवइसकु फेरना न चाहीयें क्यो
कि श्रीकल्पनिर्युक्तादिकमेकहाहैकि ॥ सोहम्मसी
सा पंचमीएपञ्जोवसइ कालगसूरीय सीसा चउ

डीएपडोवसइ ॥ अर्थात् श्रीसुधर्मास्वामीसे लेके
श्रीकालकाचार्य तकतो साधु भाद्रपद शुक्लपञ्च
मीकेपर्यूपणकरेगें अरू श्रीकालिकाचार्य पीछे
साधु चतुर्थीके पर्यूपणकरेगे इत्यादि पूर्वधराचा
र्योंकेवचनसें तथा श्रीकालकाचार्यके साथ जैनी
टीपणाका अभावहोनेसे वर्त्तमानकालमे पंच
मीकेदिन वार्षिकपर्वके कृत्य करनेमे पर्षाकासंक
मसे आज्ञा भंगका सभव होय, तातें पंचमीके
कृत्यचतुर्थीमेंज करना श्रेयहै ऐसी पूर्वधर पूर्वा
चार्योंकी सम्मतीसें तथा श्रीनिशीथचूर्णी कल्पचू
र्णी वचनानुयायी वर्त्तमानमे पंचमीकिकृत्य चतु
र्थीमे होतेहे, परंतु रागद्वेषके वससें पञ्चमीकिख
खाकहके जो पंचमीकेदिन आरंभ समारंभ प्रमुख
संसारिकृत्य करतेहे, उनोंकी तो ज्ञानीजाने को
नसी अशुभगतीहोगी कारणके ॥ संवत्सरी प्र
तिक्रमण १ लोचकरण २ अष्टमतपकरण ३

सर्वचैत्योमेअर्हद्भक्तिकरणं ४ सधर्मकु परस्परक्षाम
णाकरण ५ इत्यादि महामंगलीक कृत्योकेलिये
तीर्थंकर गणधरोने पर्यूषणा पर्व प्रवर्त्तायेहैं अरू
जैसें प्रतिक्रमणादीचारकृत्य मंगलीकहे, तैसे लो
च करणाभी मंगलीकहे क्योंकि लोचकाकरणा
हे सो बाराभेदकी तपस्यामे कायक्लेशनामा तपहै
अरू तपकुं जैनसिद्धातोमे माहामंगलीक सर्व
मगलमे प्रथम मगल कहाहै ताते कारण विना
पार्श्वस्थ भावसें जो नाइ प्रमुखके पास क्षुरमुंडन
कराणा, वो भद्रहोणा कहलाताहे सो अपमंगली
क हे पण अपना कर्म निर्जराके कारण तथा जी
वरक्षाके कारण उत्कृष्ट भावसे लोचकरणा करा
वणा तथा कारणशर क्षुरमुंडन करणा कराणा उ
सकानाम जैनशास्त्रोमे लोच नामसें मंगलीक क
हकेबतलायाहे पण भद्रहोणा अैसा अपमंगलीक
वचनसें नही बतलायाहे. क्योकि जो शोकसताप

वाला मस्तकादि मुमन करावे उनकुं लोकीकमे भद्रहोणा कहतेहे सो अपमगलीक कहा जाताहे परतु अपनी कुल मर्यादा प्रमाणे जो शरीर विनु पाके लिये क्षुरमुंमनादिकराते हे वो अपमगलीक भद्रहोणा नही कहा जाता हे तैसे जैनमे साधु सा ध्वी अरू अन्यमतमे केइ सन्यस्थादि लोच तथा क्षुरमुमनादी करते कराते हेसो अपना चारित्रकी तथाकुलकी सोना वा मर्याद वढाणेलीयेहे क्योंके साधु साध्वी तथा संन्यस्थादी अपना २ कुलमे इसीस्वरूपसेहीज सोननीक लगतेहे ताते अपम गलीक नही कहा जाताहे तिसलीये वो महामं गलीक कृत्य ॥ तिद्वयर समोसूरी ॥ इत्यादिक श्री व्यवहारनाष्यादिकके वचनसे नावाचार्यकु तीर्थंकर तुल्यमानके तीर्थंकर नगवत तथा आ चार्यमहाराजकी दोनू आज्ञा पालणेके लिये व र्तमानकालमे पञ्चमीकेकृत्य चतुर्थीके दिन कर

तेहे परंतु सवत्सरी प्रतिक्रमण १ तथा लोचकर
णा २ इनदोकृत्य शिवाय अन्यमगलीकके कृत्य
पश्चमीके दिनकरणेमेनी कुछ आज्ञा नगदोष न
हीहे. पत्युत पर्वका अंत्योत्सवका वमालाभहोताहे
अरू पूर्व सवत्सरीका सुन्यभाव टलताहे अरू जि
नशासन पर्वका महात्मवृध्धि करनेसे पर शासनमें
उन्नतिहोतीहे क्योकि जेसें भाद्रपद सुदिपंचमी
श्रीजिनशासनमे मान्य वर्त्तेहे, तैसें परशासनमे
नी ऋपिपंचमी पर्वकरके मान्यवर्तेहे ॥ तत्संबंधो
यथा॥ पुष्पावत्यांनगर्यां एको विप्रोभूत् तस्यापि
तरौमृतो क्रमेणपुत्रगृहे पितावलीवर्दोजात. मा
ता तु सुनीवभूव अथच तस्यैवपितु श्राध्दिनं स
मागतं तस्मिन्दिने वलीवर्दः पुत्रेणक्षेटयितुं तै
लिकस्यदत्त॰ पुत्रेण डग्धमानाय्य क्षैरेयीराधिता
पितृश्राध्करणाय ब्राह्मणभोजनार्थे अस्मिन्
प्रस्तावे गृहशुन्या मातृःजीवेन कथचित् ज्ञान

विशेपात् सर्प्पगरल क्षैरेयीमध्येपतत् दृष्ट ज्ञातच
माश्ननर्थो नावीति शुन्या स्वमुखेन अपूतरुत ब्रा
ह्मणाचरोपात् शुन्याकटिर्नेम्रा साशुनी गमाणि
स्थाने वद्धा क्षैरेयीनवीनराक्षा ब्राह्मणानोजिता
सध्यायासवलीवर्द सर्व्वदिनेवाहित क्षुधातुर तृप
यापिडितो गमाणिस्थानेबद्ध स्तेनिकेन तत शु
नीं ज्ञकितादृष्ट्वावलीवर्देनप्रोक्तं पापिष्ठेनममपुत्रे
ण अद्यअहभृश पीडितोस्मि तदा सापिस्व कटिन
म्र ज्ञ खप्राह तेनसुतेन पार्श्वेसुप्तेन द्वयोरपिवचन
श्रुत तदाज्ञात अहोममश्मौपितरौ तत सदैवज
ह्माप्य द्वयो क्षिरान्नदत्त तत स्तयोर्मातृ पित्रोर्गत्य
र्थे विदेशेगत्वा रूपय.प्रष्टा स्ते प्रोक्त आभ्या अ
प्रस्तावे काम क्रीडाचक्रे तेनवलीवर्द शुन्याजातौ
अथत्वं अक्षेटितान्न पचम्या भुक्त यथा तयोर्गति
स्यात् तेनतथाकृत ततोनतर लोके रूपिपचमीना
म महापर्व प्रवृत्त ॥ इसकथाका सस्कृत सुगम

है, तातें ग्रंथ गौरवके भयसें नापानहीं लीखीहै तस्मात्स्वेयमेव विचारणीयम् एकोनत्रिंश प्रश्नो त्तर सपुर्णम् ॥

प्रश्न. ॥ ३० जैनशास्त्रमे चक्रवर्तिसें वासुदेवकी सेना अर्द्ध कही उर वासुदेवसें प्रतिवासुदेवकी सेनान्यून नचाहिये तो इसहुमावसर्पिणीमे लंकेशके सेनाका प्रमाण पद्मपुराणमे ४०००० अक्षोहिणीका कहा सो अक्षोहिणीकाक्या प्रमाण और कितनी ॥

उत्तर.—जैनशास्त्रोंमे चक्रवर्त्तकी सेनासे अर्द्धवासुदेवकी सेना कही तेसेंही प्रति वासुदेवकी सेनाभी न्युनार्द्धकहीहै तेसेंही अक्षोहिणीके प्रमाणसे प्रतिवासुदेव लंकेशकी सेनाभी वासुदेवसे न्युनार्द्धहै पण अधिक नहीहै कारणके अक्षोहिणीका प्रमाण शास्त्रोमे ऐसें कहाहै ॥ यदुक्तं श्री पद्मचरित्रे ५६ पर्वे ॥ परिपुछइमगहवईगणाहिवं

पणमिऊणनावेणं अक्कोहणीए भयव कहेहि एकाए
परिमाण॥१॥अहभणइ इंदभूइ अठसुगणणा सुभे
यनिन्नासु सजोएणचणएह हवइय अखोहणी एका
॥२॥ जेत्र ञ्पढमपत्ती सेणा सेणामुहं हवइ गुम्म
अहचाहिणी ञ्पिणत्ताचमुतहाव सूणीकेणी अते २
एक्कोहनीए एक्कोयरहवरो तिन्निचेह वरतुरया पत्ते
वयपाइक्का एसापंतीसमुद्दिठा ॥ ४ ॥ पंतितिति उणा
सेणासेणा मुहंहवइएका सेणामुहाणि तिन्निउ गुम्म
एत्तो समरकाय ॥५॥ गुम्माय तिन्निएक्कायवाहिणी
साविचिय मुणिया पियणापित्तणाउ तिन्नित चमू
तिणिव सूणी नातिया ॥ ६ ॥ दसय अणीकिण
नामाउहुइ अक्कोहणी अहक्काया सखाएकेक्क स्स
उ अगस्स तउपरिकहेमि ॥ ७ ॥ एगवीससहस्सा
मत्तारि सहियाणि अठयलयाणि एसारहाण सखा
हत्थिणावि एत्तिया चेव ॥ ८ ॥ एक्केवसयसहस्स
नवयसहस्सा सयाणि तिन्नेवपन्ना साचेयतहा जे

ाणविए त्तियासंखा ॥ ९ ॥ पंचत्तरायसव होइ
हस्साणि वञ्चियसयाणि दसचेव तुरगाणं संखा
अक्कोहणी एउ ॥ १० ॥ अठारसय सहस्सा
त्तसयादोणि सयसहस्साइं । एक्कायइमासंखा
सेणिय अक्कोहणीएय ॥११॥ तथा हीकोशे ॥
अक्षौहिएया प्रमाणंतु खागाष्टैकद्विकैर्गजै रथैरेतै
र्हयैस्त्रिघ्नैः पंचघ्नैश्च पदातिनि (गजा २१८७०)रथा.
२१८७०) (अश्वाः ६५६१०) (नरा १०९३५०)
सर्वमेकी कृत्य (२१८७००) अक्षौहिणी नवति
(नारतादि पुराणेपिच) अक्षौहिएया मित्यधिकै सप्त
त्याह्यष्टभि शतै ॥ सयुक्ता निसहस्राणि गजाना
मेकाविंशति(२१८७०)एवमेवरथानांतु सख्यानंकी
र्तितबुधे (२१८७०) पचषष्टि सहस्राणि षटशता
निदशैवतु ॥ संख्यातास्तुरगास्ज्ञै विनारथ तुरंगमैः
(६५६१०) नृणा शतसहस्राणि सहस्राणि तथा न
व शतानि त्रीणिचान्यानि पचाशच्च पदातयः (१०

ए३५०) इत्येके कर्मक्षोहिणी प्रमाणम् ॥१॥ यह
अक्षोहिणीयों कही तैसेही तुरत्नी जिस जिस से
नाका श्चारन प्रयत्न करीके परिसमाप्तिकरे योद्धा
अक्षोहिणी कहातीहै इसीवास्तेहीज त्रिपष्टिशला
का पुरुष चरित्रका सप्तमपर्वमे त्रिकोटी ग्रथ कर्ता
श्रीहेमचन्द्राचार्य लंकेशजोरावणनामा प्रतिवासु
देवकी सेनाका अक्षोहिणी परिमाणसें इसमुजब
सख्या करतेहै ॥ तथा चतत्पाठ ॥ अक्षोहिणीनां
महस्रे. रसख्ये सख्यकर्मठे दिश प्रछादयन्
र्यो प्रचचाल दशानन. ॥ २५६ ॥ इसश्लोकमे
भावयहहैकि सहस्रोंकी सख्याकरिकेतो अक्षोहि
णीयोंकी सख्यानही इतनी अक्षोहिणीहै पण प्र
यत्न करीकेजो आरब्ध सख्याकी परिसमाप्ति क
री के सख्याहै इतनी अक्षोहिणी सेनासें दशानन
जोरावण प्रतिवासुदेव सब दिशाओंको प्रकर्षक
रींके आछादन करता हुवा लंका नगरीसें चलत

त्या इत्यादि पूर्वाचार्यों के वचनतें पूर्वोक्त अक्षौहि
णी प्रयत्नकृत प्रारब्धजो आद्याक संख्यासे
यत्न करिके रावण प्रतिवासुदेवके हस्ती प्रमुख
नाकी परिसमाप्ति करे तबतो इस्सुजव अक्षौहि
णीयोंका परिमाणहोताहे वोलिखतेहे ॥ आद्यपं
त्यादि प्रयत्नकृतांक ॥ एकवीस सहस्र आठसेसी
तर अकतोपि ॥ २१८७० ॥ इतने हाथीकी एक
अणिकिणनामा अक्षौहिणी असी वीस लाख
नवाणु सहस्र पांचसेवीस अकतोपि (२०९९५२०)
हाथीकी सेनाकी सर्व अणिकिणीनामा अक्षौहि
णी (ठन्नु) अकतोपि (९६) होय ऐसेंही आद्यपं
त्यादि प्रयत्नकृत्तसंख्याक एकवीससहस्र आठसे
सित्तर अकतोपि (२१८७०) रथोकी एक अणि
किणनामा अक्षौहिणी असी वीस लाख नवाणु
सहस्र पाचसेवीस अंकतोपि (२०९९५२०) रथों
की सर्व अणीकीणीनामा अक्षौहिणी (ठन्नु) अ

कतोपि (९६)होय तथा 'आयपत्त्यादि प्रयत्नकृ
त्सख्याक पेसतसहस्र (तसेंदस) अकतोपि (६५
६१०)अश्वोकी एक अणीकीणी अक्षौहिणी ऐसी
आठकोम ठासठलाख सीतरसहस्र आठसो दश(इ
कतोपि (८६६७०८१०)अश्वोकी सर्व अणिकीणी
नामा अक्षौहिणी एक सहस्र तीनसो एकवीस
अकतोपि (१३२१) होय तैसेंही आयपत्त्यादि प्र
यत्नकृत्सख्याक एकलाख नव हजार तीनसो पचा
स अंकतोपि (१०९३५०)पायककी एक अणिकी
णिनामा अक्षौहिणी ऐसी सत्तावीस कोमतुग
णीस लाख तेपन सहश्र चारसो पचास अकतोपि
२७१९५३४५० सब पायककी सव अक्षौहिणी,
अणिकीणिनामा दोसहस्र चारसो सत्तासी अकतो
पि (२४८७) होय तवसवसेनाकी परिसमाप्त अ
णिकीणिनामा अक्षौहिणी चारहजार अकतोपि
॥ ४००० ॥ होय तैसेंही अणिकीणी अक्षौहिणी

चतुरंगसेना समाप्त्यंक दो लाख अठारा सहस्र सातसो अकतोपि(२१८७००)की एक अक्षौहिणी ऐसी चारहजार अंकतोपि (४०००) अक्षौहिणी प्रतिवासुदेव लंकेशकी सेनाची वासुदेवसें अर्द्धही है पण अधिक नही है क्योकि एक महामंडलीक मुकुटबधराजाके दशसहस्र नवसो पेतीस अंकतोपि (१०९३५) हाथी अरू दशहजार नवसो पेतीस अंकतोपि (१०९३५) रथ तैसेही बतीससहस्र आठसोपाच अकतोपि (३२८०५) अश्वः॥ और चोपन सहस्र छसो पचोतर अंकतोपि ५४६७५ पायक॥ इत्यादि सर्व चतुरगसेनाका अक जोडेतब एकलाख नवहजार तीनसो पचास अंकतोपि (१०९३५०) होय तिनकुं आठहजार अंकतोपि (८०००) गुणाकरे तब सत्यासीक्रोड अडतालीस लाख अंकतोपि (८७४८०००००) होय तिनकुं चतुरग अणिकीणि अक्षौहिणी एक अक्षौहिणीके

श्रंक दोलाख अगराहजार सातसो अकतोपि (२१८७००) का नागदेते चारहजार श्रकतोपि (४०००) श्रक्षौहिणी होय॥ तथा श्रीदेवविजयग णिकृताद्यपद्म पुराणोक्त श्रक्षौहिणी संख्यामानय था॥ एकेनेकरथा अश्वा पत्ति. पंचपदातिका से नासे नामुग्वंगुल्मा वाहिनी पृतनाचमू ॥१॥ अ नीक नीवयते स्यादिभ्यादिस्त्रिगुणै क्रमात् तदाऽ नीकान्यो श्रक्षौहिणी सज्ञन तुपरत्रण ॥ २ ॥ इ त्यादि उक्त प्रमाणसे लंकेशकी चतुरंग सेनाका इ समुजब परिमाण होता हैकि। अठक्रोड चिमोत्तर लक्ष असी सहश्र अकतोपि (८७४८०००००) रथों की संख्या और इसीमुजब आवक्रोड चिमोतरला ख असीहजार अंकतोपि (८७४८००००) हस्ती की संख्या अैसेही छवीसक्रोड चोवीसलाख चा लीशहजार अंकतोपि (२६२४४००००) अश्व संख्या तथा तियालीसक्रोड चिमोतरलाख अकतो

पि (४३७४०००००) पायिक संख्या सब चतुरंग शेना मिलकर सत्यासीक्रोड और अम्तालीसला ख अकतोपि (८७४८०००००) होय तिनकु दो लाख अठाराहजार सातसो अकतोपि(२१८७००) अक्षौहिणीका भाग दे ते पूर्वोक्त सब (४००० ) अक्षौहिणी होय॥ यहा प्रयत्न करिके अणिक्षीणी तथा चतुरगसेना परिसमाप्ति अक्षौहिणीयों दो प्रकारसें लिखी तिसका परमार्थ यहहैकि प्र श्रकारने रावण प्रतिवासुदेवके सब सेनाकी अ क्षौहिणी चारहजार अकतोपि (४०००) पद्म पु राण साक्षीसे लिखी सो पद्मपुराण दिगंबराचार्य कृत्तं नवेहै क्योकि स्वेतांवराचार्य सप्रदायमेतो प्राये प्रथमानुयोगमे जोजो उत्तम पुरुषोके वर्णनके ग्रंथ हे तिनोंकु चरित्र सज्ञासें वतलातें हे पण पुराण सज्ञाकहके नही वतलातेहै तिसवास्ते पुर्वधर श्री विमलाचार्य कृत् मूल पद्म चरित्रके पंचावनमा

पर्वमे ऐसी गाथा है कि "॥ "अक्खोहणी सहस्सा हवतिचत्तारि वुड्ढजणदिठा रावण वलस्स एव म गहवई होइ परिमाणं ॥५७॥ इसगाथामें लंकेश के सेनाका परिमाण चारहजार अक्षौहिणीका क हाहै पण स्वात्मनिश्रित् तथा परात्मनिश्रित सेना का निश्रित नहि किया तातें प्रतिवासुदेवके स्वात्म निश्रित्सेनातो अणिक्कीणिनामाऽक्षौहिणीसें गिणी जाती है अरु परात्मनिश्रित्जो अन्यराजाउंकी सेना चतुरग अणिक्कीणि परिसमाप्त अक्षौहिणी सें गिणीजातीहै इसी वास्ते पूर्वोक्त दो प्रकारसें प्रयत्न परिसमाप्ति अक्षौहिणीयों पूर्वधर श्रीविम लसूरि विरचित् पद्मचरित्र तथा कुमारपाल भूपा ल सुश्रीत श्रीहेमचंद्राचार्यजीके वचनाधारसें लि खीहै इसीमें जिस प्रयत्न परिसमाप्तिकी अक्षौहि णी श्रीश्वेतांबराचार्यकृत ग्रंथोमें होय उसीकाही प्रमाण्यपणा किया जाताहै पण वासुदेवसें प्रति

वासुदेवकी सेना वढजाये वा वहूत न्यूनहोजाय ऐसी प्रयत्न परिसमाप्ति अक्षौहिणीयो जैनशास्त्रो के न्यायसे प्रमाण किई नहीं जाती है ॥ समाप्त अक्षौहिणी प्रमाण. ॥ इतित्रिशतितम प्रश्नोत्तर. संपुर्ण. ॥

---

प्रश्न:—जैनमार्गमे सूत्रजीकी पंचागी कही सो मूल १ टीका २ भाष्य ३ चुर्णीका ४ निर्युक्ति ५ इन पांचोहीका शब्दार्थ अलग २ वीग्रहसहीत खुलासा करणा ॥ ३१ ॥

उत्तरः—जिनमार्गमे सूत्रसहित पंचागीकही तहां प्रथम सूत्रका व्युत्पत्तिविग्रहयदहेके सूचना त्सूत्र वा सूत्रयती वेष्टयंती वहुनर्थान् इतिसूत्र अक्षरतोल्पतरान् अर्थतो वहुलतरानितिसूत्रं (अर्थात्) सूचना मात्र वो सूत्र अथवा वेष्टनकरे वहुत अर्थकु वो सूत्रकहावे वा अक्षरते अल्पतर

अरु अर्थ तें बहुलतर वोसूत्रकहावे ॥ १ ॥ नियु
ताते अथ्रा इत्यादि आवश्यक सूत्रादिवचनात् सू
त्रेनियुक्ता स्थापिता अर्थास्तेषा पद भजन व्या
ख्यान निर्युक्ति ॥२॥ (अर्थात्) सूत्रमे स्थापित
कियेजो अर्थ तिनोंकों पदभंजनकरके व्याख्याकरे
वो निर्युक्ति कहावे ॥ २ ॥ सूत्रार्थ प्रपचनभाष्यं
॥३॥(अर्थात्) सूत्रार्थ प्रपचनकरके व्याख्या करे
वोभाष्य कहावे (अथवा) भाष्यंपदार्थविवृती ॥
यतुक्त॥ सूत्राथो वर्ण्यतेयत्र वाक्यै सूत्रानुकारि
भी स्वपदानिचवर्ण्यंत भाष्यभाष्यविदो विदुरिति
(अर्थात्) पदका अर्थ विवरणकरे अथवा सूत्रानु
कारीवाक्यों करिके जहा तहा सूत्रार्थका विवरणकरे
और अपनापदका भी वर्णन करे उसकुं भाष्य
के वेत्ता भाष्य कहतेहै ॥३॥ (और) भाष्य नि
र्युक्ति प्रपचने सूत्रार्थ चूर्यते चूर्णि चूर्णिका ४
(अर्थात्) भाष्य निर्युक्तिका प्रपचन सहीत सूत्रार्थ

विवेचन करे वो चूर्णि कहावे ॥ ४ ॥ तथा वि
षमपदव्याख्या टीका (अर्थात्) सूत्रका विषमपद
की व्याख्या करे वो टीका कहावे (तथा) निःशेष
पदव्याख्यापंजिका (अर्थात्) समस्त सूत्रादिपद
की व्याख्या करे वो पंजिका नाम्नी टीका कहावे
अथवा सूत्रार्थ दिपक मिवदीपयतीतिदीपीका
(अर्थात्) सूत्रका अर्थकु दीपकपरें दीपन करेवो
दीपका नाम्नी टीका कहावे (तथा) निर्युक्त्यादि
विवर्णन विशेषेपे. सूत्रार्थ विवरणंक्रीयते इतिवृत्तिः
(अर्थात्) निर्युक्ति भाष्य चूर्ण्यादि विवर्णन सही
त विशेषकरकें सूत्रार्थ विवर्ण करे वो वृत्ति नाम्नी
टीका कहावे इत्यादि टीकाका अनेक भेदहे सो
जैनागमसें जाणणा ॥ इतिद्वांत्रिशत्तम प्रश्नो
त्तर सपुर्णम् ॥ ३२ ॥

---

प्रश्नः—तारा टूटे सो पृथ्वीपरतो पडे नही,ज

व ईसका स्वरूप क्याहे? सूत्रमेंतो ज्योतिषोंके वि
मान शास्ते और गिणतीके कहेहे और आपसमे
छेटी भी वहोतहे और १००० देवता सिंघ हाथी
अश्व वृषभके रूपकरि उगके चलतेहेतो फेर पडे
कैसे? और ठाणांग सूत्रमेतो एसा लिखाहे यत्पा
ठ ॥ तीहं ठाणेहं तारा रुवंचलेजा इत्यादि कह्या
सो ये मवर्ति कैसें ॥ ३१ ॥

उत्तर –जोतिषीदेवोका विमान सास्वत
असख्य गिणतीके परस्पर अंतर सहीत अश्वादि
रूपसें उठाके देवता चलतेहे ऐसा सूत्रमे कह्या
इत्यादि कारणसेंही तारा प्रमुख जोतिषीयोंके वि
मान पृथ्वीपर पडते नहींहे और श्रीस्थानांग सू
त्रमे तारामात्रका चलना कहासो तो एक स्थान
सें अन्यत्रस्थान संक्रमण कहाहे पण टूटके पडने
का नहीं कहाहे ॥ तथाच तत्पाठ ॥ तिहिं ठाणेहिं
तारारूवेचलेजा विकुव्वमाणेवा परियारे माणेवा ठा

णाववा ठांणंसंक्कममाणे तारारूवेचलेज्जा॥व्याख्या ॥ तिहित्यादि तारारुवेती तारक मात्रं चलेज्जा स्वावस्थानंत्यजेत वैक्रियंकुर्वद्वा परिचारयमाणंवा मैथुनार्थं सरम्भयुक्तमित्यर्थ. ॥ स्थानका द्वैकस्मात् स्थानान्तर संक्रामनगठ दित्यर्थ. यथा धातकी ख ण्डादि मेरूपरिहर दित्यर्थ॰ अथवा क्वचिन्महार्धिके देवादो चमरवद्वैक्रियादिकुर्वतीसति तन्मार्गदा नार्थ चलेदिती ॥ उक्तच ॥ तत्थणं जेसेवाघाइए अंतरेसे जहन्नेणां दोन्निछावठे जोयणसये उक्कोसे णवारस जोयण सहस्साइति ॥ तत्रव्याघातिक मंतरं महर्धिक देवस्यमार्गदानादिति ॥ नावार्थः ॥ इहां सूत्रमे रुप शब्द समस्तार्थ वाचीहै ॥ तातैं तारकमात्र तीनस्थानके स्वस्थानकुं छोडे वो कहेहे विकुर्वणा करते १ तथा देवांगनासे मैथुन सेवा क रनेके अर्थ अथवा एकठिकाणासे दूसरे ठिकाणे गमन करते जैसें धातकीखण्डादिकका मेरुप्रति

परिहरण करे अथवा कोईक महार्द्धिक देवादी च
मरेंद्रादीपरे वैक्रियादीक रैथके तिसकु मार्गदेनेके
अर्थचले कहाहैकि कोई व्याघातपमे हुये (१६२)
एकसोबासठ जोजनका अंतरपमे और उत्कृष्ट
(१२) बाराहजार जोजनका अंतरपडे तहा व्या
घातिक अंतरहैसो महार्द्धिक देवकु मार्गदेनेसे पम
ताहे ऐसें जैनसिद्धांतोमे ताराओका चलणेका
अधिकारहे पण टूटकर पडनेका अधिकारनही हैं
लेकर तारे टूटकर पमते हुये लोकोंकों निजरआ
तेहे वोकुत्तारे टूटके नही पमतेहे लेकिन उल्कापा
तअग्नीहे इसका अर्थवाणाग वृत्यादि जैनसिद्धांतो
मे ऐसा कहाहेकि उल्काआकाशजाऽग्नीं तस्यापा
त उल्कापात ॥ अर्थात् आकाशमे उत्पन्न हुईजो
अग्नीतिसकापडना वोउल्कापात अग्निकहातीहे वो
अग्नीवायवादिपदार्थोके परस्पर घसारेसें आकाश
में उत्पन्न होके गिरतीहे क्योंकि जैनसिद्धांतोमें

तैजसकार्मण ये दो शरीर सब शरीरके बीजभूत कहे हैं वे शरीर द्रव्य भावभेदसे दो प्रकारकेहै तहां अनादिसकर्म जीवोंके लोलीभूतपनेसे सदा साथही रहते हैं वे तो भाव तैजसकार्मण कहलाते हैं अरू उदारिकादि सचित्त अचित्त पुद्गलमे रहते हैं वे वेद्रव्य तैजसकार्मण कहलाते हैं तहां तैजसकार्मण शरीरका लक्षण जैनसिद्धांतोमे ऐसा कहा हैं॥ तेजसोभावस्तैजस मूष्मादिलिंगासिद्ध ॥ उक्तंच ॥ सव्वसउम्हसिद्ध रसादिआहार पागजणगंच तेयग लद्धिनिमित्तंच तेयगहोईनायव्वामिति ॥ १ ॥ कर्मणोविकार, कार्म्मणं सकलशरीर कारणमिति ॥ उक्तंच ॥ कम्मविगारोकम्मणठविहिविचित्त कम्म निप्पन्नं सव्वेसिसरीराण कारणभूयंमुणेयव्वति॥२॥ इत्यादि वचनसे तैजस सरीरका ज्वलन स्वभाव है इसका पर्यायांतर नाम ( आकसजिन ) अर्थात् तैजस और प्राणदायक तत्व है इसका गुण यह

हैकि सबकों जलादेता है एसा जैनशास्त्रादिक अनु
सारसें यूरोपीयन विद्वानोंनेभी अपनी बुद्धिसे पूर्वो
क्त नामसें प्रगट किया है और कार्म्मण शरीरका प
र्यायातर हाइड्रोजन१ नाइट्रोजन२ अरू कार्बन३
यह तीननामसें जलादि उत्पादक प्राणनाशका
दि तत्व कहकें बतलाते हैं अरु आकसिजिन१
हाईड्रोजन२ कारबन३ इन तीन तत्वोंसे सब व
स्तुकी पैदास मानते हैं अरु गासवा वाष्पा
दिकसे फासफोरादिक वस्तु प्रगट करके बतलाते
है सो सब जैनशास्त्रोंमे सर्वज्ञ महाराजने द्रव्य
तैजसकार्मण शरीरके पुद्गल कहके बतलाया है
ताते आकाशमेजो अधिक द्रव्य तैजसवाले पुद्ग
ल और न्यून तैजसवाले द्रव्यकार्मण पुद्गल
वाय्वादियोगसे परस्पर अथडाणेसे चढकाअग्नि
जुगनु तथा फासफोरादिकके सदृश पैदा होके गि
रती है तब देवादिकके प्रयोगविना रातको लोक

दियेसे जलते देखके और श्मसान वा जहा मुरदेगामे जाते हैं वहा भी रात्रिके समय मसालोंसी जलती देखकर कहते हैं कि भूत फिरते है वा आकाशमे देखते है तो दूरतर दृष्टिकी योग्यतासे उल्कापा तअग्निकी ताराजैसी लीकदेखके कहते है के तारा टूटती हे परंतु वस्तुता यह सब किसी अधिक तै जसवाले पुद्गल द्रव्य कार्मण शरीरवाले पुद्गलोसे मिलके होताहे ऐसे दिग्दाहादिक प्रवृत्तिभी जा नके श्री सर्वज्ञ वचनसे विभ्रम दूर करना यहही श्रेय है ॥ इति द्वात्रिंशत्तम प्रश्नोत्तरम् संपूर्ण ॥३२॥

---

प्रश्न—मेघाम्बर होते है, सो पश्चिम दिशासे कितनी दूरसें आते हैं? और पूर्वमे कितनी दूर जाते हैं? फिर पृथ्वीसे कितने ऊंचे हैं? श्री जयकुजर सूत्र मेंतो उदक गर्भस्थिति उत्कोसेण६मासा कही जब गर्भ ऊंचे कहा ठहरते हैं? और मेघ ध्वनिसे गर्जि

त होता है अरु विद्युत् पतन होताहै इनदोनोका स्वरूप केसे ? इसरीतकुं क्या देवोपनीत माननी जो नहीतो इसकी सरधान केसें करणी? लोकिक एसा कहतेहेके बदल नीचे उत्तरके आहार निहार करजाते है सो यह बात असम्भावित है इसका समाधान करना ॥३३॥

उत्तर.–मेघाम्बर पश्चिमादि दिशासे पूर्वादि दिशामे अनेक योजन जाता आता है यदुक्त श्री भगवत्यंगेतरपाठ ॥ पभूणंभंते वलाहगे एगमह इत्थिरूववा जावसदमाणियरूवंवा परिणामेत्तए हंतापभू पभूणभंते वलाहए एगमहं इत्थिरूवपरि णामेत्ता अणेगाइ जोयणाई गमित्तए हंतापभू से भंते किंआयट्टीएगच्छइ परिड्डीएगच्छइ नोआयड्डी एगच्छइ परिड्डीएगच्छइ एवंनोआयकम्मुणा परक म्मुणा नोआयप्पओगेणं परप्पओगेणं ऊसितोदयं वागच्छई पयोदयागच्छइ सेभंते किंवलाहए इत्थी

गोयमा वलाहएण से णोखलुसाइत्थी एव पुरिसे आसे हत्थी पभूणंनते वलाहए एगमह जाणरूवं परिणामेत्ता अणेगाइ जोयणाइ गमित्तए जहा इत्थीरूव तहाजाणियव्व नवर एगऊ चक्कवालपि दुहउचक्कवालंपि जाणियव्व जुग्गं गिल्लि थिल्लि सी यासदमाणियाण (तहेव व्याख्या) पभूणंनते वला हएएगमह जाणरूव परिणामेत्ता इत्यादि पतोव्यं पिगच्छइ(इत्येतदन्त स्त्रीरूप सूत्रसमानमेव विशेष. पुनरथ) सेनते एगऊचक्कवालगच्छइ दूहउचक्कवाल गच्छइ गोयमा एगऊचक्कवालंपिगच्छइ दुहउ चक्क वालपिगच्छइत्ति अस्यैवोत्तररूपमशमाह नवर एग उइत्यादि इहयान शकट चक्रवालंचक्रं शेषसूत्रेषु स्वयं विशेषोनास्ति शकटएव चक्रवालभावात्तश्च युग्यपि गिल्लि थिल्लि शिवकास्यदमानिकारूप रू पाणि स्त्रीरूपसूत्रवदध्येयानि एतदेवाह जुग्ग गि ल्लि थिल्लि सीया सदमाणियाणं तहेवत्ति ॥

नापा समर्थ हे हेजगवन मेंघ हेसो एक वमा स्त्रीका रूप प्रति इत्यादियावत् पालखीरूप प्रतिविकुर्वेमेघ के अजीवपणे कर्के विकुर्वणाका असजवसे परिण मावे औसा कहा परिणामजी इनके विस्रसा कहते स्वाजाविक इति प्रश्न ॥ उत्तर हत गौतम समर्थ है तब हेजगवन मेघ एक वमा स्त्रीकारूपकु परीण माके अनेक योजनप्रते जाणेकु समर्थ हे इस प्रश्नका उत्तर जगवत कहते हे कि हता गौतम स मर्थ हे तो हे जगवन वो मेघ आत्मलब्धिकी सम र्थासेंजाय अथवा परलब्धि समर्थासे जाय ? हे गौ तम मेघके अचेतनपणासे विवक्षित शक्तिके अ जावसे आत्मशक्ति समर्थासें न जाय पण वायु अथवा देवादिकका प्रेरया हुवा जाय औसें आत्म क्रियासें न जाय परक्रियासेंजाय एव आत्मप्रयोग उद्यमसें न जाय परप्रयोग उद्यमसें जाय और ऊची पताकाके आकारसें ऊचानी जाय अरु नी

ची पताकाके आकारसें नीचानी जाय उसकुं हे जगवन् वलाहक मेघ कहना किंवा स्त्री कहना? हे गौतम मेघ कहणा पण निश्चय स्त्री न कहणा अैसें स्त्रीरूप सूत्रकी तरह पुरुपरूप अश्वरूप हस्तिरूप नी सूत्र कहना पण यानरूप सूत्रके विपय विशेप हे वो दिखावेहे समर्थ हे हेजगवन मेघ एक वमा यानशकटरूप परिणमाके अनेक योजन तक जाय इत्यादि सूत्रसे (पतोदयपि गछइ) इस सूत्र पर्यंत स्त्रीरूप सरीखाहीज सूत्र कहना पण इतना विशेप कहणाके एकदिशि चक्रवालपणे नी जाय अरु दोदिशि चक्रवालपणे नी जाय इहां यान शब्दसें रथादिक कहना और चक्रवाल शब्दसें पईमा कहणा शेपसूत्रोके विपे यह विशेपनही शकटादिक विशेपहीज चक्रवालका सद्भावपणासे शेष जुंगा गिल्लि प्रमुखसूत्र सब स्त्रीरूपकी नांई कहना ॥ इहां सूत्रमे विश्रसा स्वनावसे स्त्रियादिक अनेक

परिणाम परिणमके मेघकु अनेक योजनतक जा
ना कहा तातें परस्पर दिशामें अनेक योजनतक
मेघका नाना सन्नव हैं ॥१॥ तैसेही मेघका पृथ्वीसे
न्नी अनेक योजनतक ऊचा नीचा जाने अनेका
तथाऽवस्थित रहनेकान्नी सन्नवहे,परतु स्वान्नाविक
मेघका वरसना कितना ऊचा नीचासें होताहे एसा
प्रमित प्रमाण तो कोई ग्रथमें मेरे दृष्टिगोचरमे
आया नहीं तो न्नी पूर्वोक्त सूत्र वचन अनुमानसे
(तथा) जहातकका गर्न्न अवस्थित होय तहांतक
का पृथ्वीपे वर्षात वर्षनेका सन्नव श्री न्नद्रबाहु
स्वामीके वचन अनुमानसें होताहे कि आकाशसें
चारकोश न्नसौचालीस धनुष् न्नचेसें बावनपल तोल
प्रमाणे उदक बिंडु दो दो धनुषके अतरमे एकेक
सरसव प्रमाणे घटे तो प्रथ्वी पर पमे तब साढे
इकावन पलतोल प्रमाणे रहे और जो उत्सेधा
गुलके छप्पनजोजन अर्द्धकोश दोसोअस्सी धनुष

और एकधनुप ऊंचेसें बावन पलतोल प्रमाणे उद कगर्भ आकाशमेसें परै तव पृथ्वीसें एक धनुप ऊचे आते एक सरसव प्रमाणो उदकबिंदू रहे ताते उदक गर्भका अवस्थित स्थानसे उदकगर्भका वर्पनेका संभवहे अन्यथा बहुत योजनसे पानीकावर्पना होय तो वाय्वादि योगसे पानीका सोपत होने से वर्पनेकाभी अभाव होय ॥१॥ तथा श्री भगवतीसूत्रमें कालांतरे जल वर्पनेका हेतु पुद्गल परिणाम वो उदकगर्भ कहावे वो उदकगर्भ जघन्यसे एक समयकी स्थित्यंतरवरसे और उत्कृष्ट रहे तो ६महीनाकी स्थित्यंतरवरसे ऐसा कहाहै परंतु इससूत्रका नाम टीकाकारने पाच लिखेहै तिसमें जयकुजर ऐसा इससूत्रका नाम नही लिख।है लेकिन् टीकाकारने जयकुंजरहास्तिकी इस सूत्रकुं उपमा देके महत्ता कीईहै ताते यह औपमीक जयकुजर नाम सूत्रमे

अर्थात् श्रीभगवती सूत्रमे'उदक गर्भका उत्कृष्ट छमासकी स्थिती कही तहांतक अन्य देशांतर हे मालय पर्वतादि स्थानोमे अथवा जिसी स्थानमे उत्पन्न भया उसी स्थानमे जो वाय्वादिककी प्रे रणा न होयतो उत्कृष्ट छमासतक उसी स्थानमेभी उदक गर्भ रह जाय परंतु उत्सेधांगुलके छप्पन यो जन किंचिदधिक आकाशमे रहता है तातें अती दूरतरका कारणसे लोकोकी दृष्टि नहीं आता है पण उसीस्थानमे वो उदकगर्भ अवस्थितरहके पी छे षटमासानंतर जहा अवस्थित रहा उसी स्था नमें तथा वाय्वादिककी प्रेरणासे अन्यत्र स्थानमे जाके वरसताहै॥३॥ और जैसे पाताल कलसादि कका वाय्वादि क्षोभसें समुद्र जलमे वाय्वादिक प्रवेस होनेसे समुद्र गर्जित होताहै तथा क्षारादि क अधिक उष्णताके ग्रहण करनेवाले पृथ्वी प्रमुख के पुद्गल वो सूर्यकी उष्णता ग्रहण करि के वायु ज

लादिकसे परपस्पर अर्थंमाणेसे वडवानल अग्नि पेदा होतीहै तैसे उदक गर्भमेभी वाय्वादिकका प्रवेस होनेसें तथा जैसे श्वेत पाषाणादिकमे उश्नता ग्रहण करणेकी अधिक शक्तिहै अरुवायुमें उश्नता ग्रहण करणेकी न्यून शक्तिहै औसे आकाशमे अधिक न्यून शक्तिके ग्रहण करनेवाले पृथ्व्यादि परमाणु संक्रमे हुये उदक गर्भमे सीतस्पर्श वायुके योगसे उदक गर्भ हिमकर सदृश रस जाताहै पीछे सूर्यादि उश्न पुद्गलोंके योगसे वो गर्भ परिपक्व होके पींगलती वखत उसमे कक्कमसंवृत्तादी वायुका प्रवेश होके वायुका पीछा निकासकी वखत जैसे घरटादिकका वायुका निकासकी तरह मेघमे गर्जारव शब्दकी धुनि होतीहै वो गर्जारवमेघका कहाताहै और जैसे चमकादि पाषाण लोहादिकके घसारेसे अग्नी पेदास होती है तैसे उदक गर्भमेभी बहुत उत्कट द्रव्य तेजस पुद्गलोंके वाय्वादि पुद्

जोंके घसारेसे अग्नि चमकतीहै वो विद्युत अर्थात्
विजली कहातीहै अरु जब वायु तथा जलकी गाव
पमके बधाहुवा वायुका निकास होताहै तब दृढ
पुद्गलोंके घसारेसे अग्नि पैदाश होके सकीर्ण वा
थुरु सार कमकमाट शब्द करिके अग्नि पमतीहै
वो विद्युत्पात अर्थात् विजलीका पमना कहाता
है ॥४॥ और देवादिकोंके करेहुयेभी अभ्र प्र
मुख गर्जन विद्युत्पातादि मेघाम्बर होते है परतु
रुतु सबंधी जो सदामतके वरसातमे जो अभ्र प्र
मुख गर्जनादि मेघाम्बर होताहै वो उश्न शीतादि
पुद्गलोंके परस्पर मिलाप होनेसे जैसे बीजमे पा
न पुष्पादिककी सत्ता प्रगट होती है तैसे उदक ग
र्भसेभी गर्जनादि सत्ता प्रगट होती है पण देवकृत
नही होती है क्योंकि श्रीस्थानागादि जैनशास्त्रोमे
चार प्रकारके उदकगर्भ कहेहे ॥ तत्पाठ ॥ चत्तारि
दगगब्भापण्णत०॥ उस्सा महीया सीया उसिणा

चत्तारिउदगगब्भा पन्नंत्ता तजहा हेमगा अब्भसंथ
डा सीउसिणा पंचरूविया ॥ सिलोगो ॥ माहेउहे
मगागब्भा फग्गुणेअब्भसंथडा सीउसिणाउयचित्ते
वइसाहेपंचरूविया ॥१॥ व्याख्या ॥ चत्तारीत्यादि
सूत्रद्वयमाह दगगब्भेत्ति ॥ दकस्योदकस्य गर्भाइवग
र्भा दकगर्भाः कालांतरेजलवर्षणस्यहेतव तत्सं
सूचका इतितत्त्वमिति अवश्याय· कुपाजलं मह्हि
काधूमिका शीतान्यात्यन्तिकानि एवमुष्णोधर्मे ए
तेहि यत्रदिने उत्पन्नास्तस्माडत्कृष्टेणाव्याहताः
सत· पड्भिर्मासै रुदकंप्रसुवते अन्यैःपुनरेवमुक्तं
पवनाभ्रवृष्टिविद्युद्गर्जितशीतोष्णा रश्मिपरिवेषाः
जलमत्स्येनसहोक्ता दशधाचांवुप्रजन्यहेतु· ॥१॥
तथा शीतवातश्चविद्युश्च गर्जितपरिवेषणा सर्वगर्भे
प्रुशसति निर्ग्रंथा· साधुदर्शनाः ॥१॥ तथा सतमे
सतमेमासे सतमेसतमेहनि गर्भा पाकंनियच्छति
यादृशास्तादृशंफलं ॥ १ ॥ हिमंतुहिनंतदेवहिमकं

तस्यैतेहेमका हिमपातरूपांइत्यर्थं ॥ अभ्रसयम
त्ती ॥ अभ्रसंभृतानि मेघैराकाशाच्छादनानीत्यर्थ ॥
अत्यंतिकेशीतोष्णो पचानारूपाणागर्जितविद्युञ्
लवाताभ्रलक्षणानासमाहार पचरूप तदस्तियेषा
तेपचरूपिका उदकगर्भा इहमतातरमेव पौषेसमा
र्गशीर्षेसंध्या रागोंबुदासपरिवेषा नात्यर्थंमार्गशिरे
शीतंपौषेतिहिमपात ॥१॥ माघेप्रबलोवायु स्तुपार
कलुषद्युती रविशशाकौ अतिशीत सघनस्यचभानो
रस्तोदयौधन्यौ ॥२॥ फाल्गुनमासेरूक्षश्च ॥ राग
पवनोऽभ्रसंप्लवा स्निग्धा परिवेषाश्चसकला कपि
लस्ताम्रोरविश्वशुभ ॥३॥ पवनघनवृष्टियुक्ता श्चैत्रे
गर्भा शुभा सपरिवेषाः घनपवनसलिलविद्युत्
स्तनितैश्चहितायवैशाख इति ॥४॥ तानेव मासभे
देन दर्शयति माहेत्यादि ॥ भावार्थ ॥ कालांतर
मेघवर्षणाकेहेतु या तिनकेसूचकचार प्रकारसेप्ररूपे
श्रीतीर्थंकर गणधरोंने वो कहेहै एकतो उस गर

जो रात्रिमे जल पमताहै वो ॥१॥ दूसरा महिका जो धूअर२ तीसरा वाढीजो वंढ३ चौथा उष्णजो सूर्य प्रमुखवाम ॥ ४ ॥ यह चार प्रकारसे जिस दिन उदकगर्भ उत्पन्न मान होय तो उसदिनसे अव्याहतजो विनाश नही होयतो उत्कृष्ट वमासा नतर उदकका प्रसव होय और आचार्य फेर इहां ऐसे कहतेहैकि पवन १ अभ्र २ वृष्टि३ विद्युत४ गर्जित५ शीत६ उष्ण७ सूर्यकिरण८ सूर्य चंद्र परिवेष्टितमन्दल९ जलमत्स अर्थात् इन्द्र धनुषादि १० यह दश कारण मेघके पानीके हेतु हैं तथा शीत१ वायु विंड२ अर्थात् जलकणिकाखिरणा३ परिवेषणा अर्थात् सूर्यके चारू तरफ मंन्दलाकार तेजो विशेष४ यह पूर्वोक्त चिन्ह अर्द्धादृष्टिके देख नेवालेनिर्ग्रंथमुनिनी सवगर्भमे उक्तगर्भ प्रसंसते हे तथा सातसात मासमे सप्तमसप्तम दिनमे ग र्भोंका परिपाक जैसा होय तैसा फलकी नियम

करे इत्यादि प्रथमोक्त सब गर्भ उत्पन्न होनेका अ
थवा वर्षणेका चिन्ह जानना,और फेरभी पानीके
गर्भ चार प्रकारके कहेहै वो कहेहैकि एकतो हि
मका पमना१ अरू दूसरा अभ्र आकाश आच्छा
दन करे२ तीसरा अत्यंत शीत वा धाम पमे३
चोथा पचरूपी आकाश अर्थात् गाज१ वीज२
जल३ वात४ शीत५ इत्यादि पाच प्रकारसे आ
काशमे वादलका चिन्ह होय वो पचरूपी आकाश
कहावे इहा मतातर ऐसाहैकि पौष मार्गशीर्षमा
समे सध्यारागादि होय अथवा मार्गशीर्षमासमे
अति ठंढ पमे अरु पौषमासमे हिमका पात होय
और माघमे प्रबलवायुका तुषार अभ्रप्रयोगसें
रविशशीका कलुषद्युति अतिशीत फेर सघन अ
थवा सूर्यका अस्तोदयसमे धनुषाकार होय अने
फाल्गुन मासमे रूक्षप्रचंम पवन अभ्रसंप्लव स्नि
ग्ध परिवेषमम्ल पीतरक्तादिरविरेखा तथा चैत्र

मासमे घनवृष्टियुक्त पवन फिर वैशाखमें सूर्यमंमल कठिन पवन पानी बीजली स्तनित इत्यादि चि न्होते हित्तकारी होय वा अही मास नेदसें सूत्रमें श्लोकसे दिखाये है. माघ मासमे हिमकागर्न फा गुनमासमे वादलाका गर्न, चैत्रमासमे शीतोष्ण का गर्न, वैशाखमासमे पचरूपी गर्न ॥१॥ इत्या दि जैनशास्त्रोंमे शीतोष्णादि पुजलोके मिलापसें उदकगर्नकी उत्पत्ति तथा वर्षणेका हेतु कहा है, वह शीतोष्णादि पुजल आकाशमेनी बहुततर रहे है तथा पृथ्वी समुद्रादि जलके परमाणु उष्णतादि पुजलोका मिलापसें लघु होकर आकाशमे चढके शीतवाय वादिकोंके पुजलोंसें स्पर्शहोनेसें समुछि म उदकगर्न उत्पन्नहोके पीछे उष्णतादि पुजलो सें परिपक्क होनेसें बिंदू होकर नीचे बरसाताहे।५। और जो लोक कहते है कि, बादल समुद्रमेंसें जलनरके आकाशमे जाके मीठा करके पीछे वर

साते है तथा वद्दल नीचे उतरके आहार निहार करजाते है इस्का कारण यह है कि, उदकगर्भके सुक्ष्म पुगल महिकादिरूपसें आकाशमेसें गिरके पृथ्वी और समुद्रादिककी वाष्पसें मिलती हे तव लोकोंके दृष्टिगोचरमे वद्दल जैसा दिखाई देता है उसको देखके कविलोगतो शाद्दश्य उपमालका रसें इसमुजव समुद्र तथा मेवकाकथनकी अन्योक्ति करके कहते है ( समुद्रवाक्य ) ॥ दोहा ॥ हमहीपेजललेयके लेकरसिखरचढत ॥ रेनिर्लज्ज निवुरत हमहीपे गाजत ॥ १ ॥ ( मेघवाक्य ) खारो नीर उप्पणजन पथि कोनपिवत अमृतकर वरसावस्यु गुण भरियो गाजंत ॥२॥ इत्यादि कवि लोकोंकी अन्योक्ति सुनके अज्ञवाल लोक कहते हेकि वद्दल समुद्रसें पानी भरजाते है तथा उष्णादि पुगलोका योगपाकर पृथ्वी और समुद्रादिक जलसे स्वभाविक वाष्प नीकलता है इस वाष्प

नीकलनेसे पृथ्वी तथा तृण वृक्षादिकके पान
पुष्पादिक शुष्क हो जातेहै और धूआ महिकादि
प्राकाशसे गिरनेसे आर्द्र हो जातेहै तब पृथ्व्यादि
कोंका संकुचित आकार तथा वर्णादिक बदल
नेसे अज्ञ लोक कहतेहै कि बदल नीचे उतर
के आहार निहार कर जातेहै लेकिन् अपनी
स्वच्छ बुद्धिसे बाह्य पदार्थोंके प्रत्यक्ष करने
वाले वर्तमानकालके यूरोपीयन विद्वान भी
अभ्र वृष्टिका विचार ऐसे कहतेहैकि पृथ्वी
और समुद्रसें भाफ् उत्पन्न होय लघुताके हेतु उ
र्ध्व गमन करती है, फिर शीतल वायुके स्पर्श होने
में जलके सुक्ष्म भागोंका परस्पर सयोग होय बि
दू रूपसें गुरुताके कारण पृथ्वीपर गिरती है इसी
को मेह कहते है इसी रीतीसे हंस अभ्रादिक भी
उत्पन्न होते है यह बात इसी रीतिसे प्रमाण करते
हैकि पानी गरमकरनेके समय एकथाली उसके मु

खपर धरदो तो पानीसें नाफ नुठकर थालीके पैंदे मे लगेगी फिर उसें उतारकर देखो तो थालीके ऊपर बून्देंसी दिखाई देंगी क्योंकि थाली सीतल हो, ती है और उसमे लगनेसें नाफनी अपनी उष्णता खोदेती है इसीसें फिर अपने पूर्वरूप जलको ग्रहण करतीहै यह वाह्यनाव अनुमाननी किंचित् जैनशास्त्रोसें मिलताहै; विना विचारसे बोलनेवाले अज्ञ लोकोंका पूर्वोक्त बदलोका आहार निहार करनको बिचार अनुमानादिक प्रमाणोंसेंनी नहीं मिलताहै उससे पूर्व सर्वज्ञोक्त जैनसिध्धांतोमे उदक गर्नादिकका बिचार कहा, उसी मुजब श्रध्धा करनी चाहिये वही श्रेयहै ॥ इति त्रयस्त्रिंशतम प्रश्नोत्तर सपुर्णम् ॥३३॥

---

प्रश्नः ३४ ॥ दर्शनमोहके ३ नेद है, १ सम्यक्त मोहनी, २ मिश्र मोहनी, ३ मिथ्यात्वमोह

नी; इन तीनोंका स्वरूप दृष्टांत और दार्ष्टांत क
रके कहणा ॥३४॥

उत्तर—जैसें उरकट्मदिरादिपान करनेवालेको
था काचका मलरोगवालेको शखादिक श्वेत वस्तु
भी विपरीत देखनेमे आतीहै तैसें मिथ्यात्वके योगसें
विभ्रान्तियुक्तभी आत्मस्वरूपको विपरीत जानता
है जैसें सीपकुं रजत यही स्वरूप मिथ्यात्वमोहनी
का है ॥१॥ और जैसें ग्रामीण किरातादिक रजत
था सुवर्णादिक वस्तुको अछा जाने परन्तु अनि
र्धारतासे ग्रहण न करे तैसें विभ्रमपणे संदेह
क अनिर्धारपणे आत्मस्वरूप जाणे पण आत्म
ान प्रति प्राप्त होने नही देवे यही स्वरूप मिश्र
ोहनीका है ॥२॥ तथा शुक्ति रजतादिक वस्तुको
यथार्थ जाने अरू एकसें अधिक भी जाने पण अ
ना कार्यकी सिद्धिकरने योग्य वस्तुमें अत्यंत मोह
रे तैसें सिद्ध वस्तुके उपर अर्थात् शुद्धदेव गुर्वा

दिकोंमे मोह उपजावे कि मेरा देव, मेरा गुरु तथा
जिनवचनमे शका उपजावे वह समकितमोहनी
कहावे ॥ ३ ॥ तथा मदनकोद्रव दृष्टांतसेंभी ती
नु मोहनीका स्वरूप जैनग्रंथोंमें कहाहै कि शुद्ध
मदनकोद्रवका पुंज तुल्य मिथ्यात्व पुद्गल होय
वह समकितमोहनी ॥ १ ॥ और अर्द्ध विशुद्ध
पुंजतुल्य मिथ्यात्व पुद्गल वह मिश्रमोहनी ॥२॥
अरू अविशुद्ध पुंजतुल्य मिथ्यात्व पुद्गल वह मि
थ्यात्वमोहनी ॥ ३ ॥ इनका विशेष स्वरुप विशे
षावश्यकादि जैनसिद्धांतोसें जानना॥इति चतुस्त्रिंश
प्रश्नोत्तर संपूर्णम् ॥३४॥

प्रश्न—३५ सिद्धांतोमेंतो मुनीकु गोचरी इस
माफक करणी कही ॥यतपाठ ॥उच नीच मज्झमाय
कुलाय घर समुदाणी भिरकायरिये अडिनज्ञे ।
इत्यादि पाठमेंतो सर्व कुलकी गोचरी करणी ठहरी
जब चामारादिक और यवनादिक कुल केसे वर्जित

करे ॥यत्पाठ ॥ अपडीकुंठ कुलं न पवेसई मामगं परिवज्जए अचित कुलेनपविसइचचइत्त पविसकुल इति वचनात् ज्ञेयं ॥ ३५ ॥

उत्तर–श्री दशवेकालिक पंचम अध्ययनकी गाथा १७ मीमे पडिकुठपाठकेजगे अपडिकुठ पाठ लिखा सो अपपाठहे वास्ते पडिकुठ गाथामें वृत्तिकार श्री हरिभद्राचार्यजीने (प्रतिकुष्टकुल) दो प्रकारके लिखे हे॥तथाच तत्पाठ॥पडिकुठत्ति॥सूत्रव्याख्या॥ प्रतिकुष्ट कुल द्विविधमित्वर यावत्कथि कच इत्वरं सूतकयुक्त यावत्कथिकमभोज्यं एतन्नप्रविशेत् शासनलघुत्वप्रसंगात् मामक यत्राहगृहपतिः मा ममकश्चिद्गृहमागछेत् एतद्वर्जयेत् भडनादि प्रसंगा त् अचित्तकुल मप्रीतिकुलयत्रप्रविशद्भिरप्रीतिरु त्पद्यतेनच निवारयति कुतश्चिनिमित्तांतरात् तत्स क्लेशानिमित्तप्रसगात् चियत्त अचियत्त विपरीत प्रविशेतकुलंतदनुग्रहप्रसगा।दिति सूत्रार्थः ग–

हा) सूत्र व्याख्यामें प्रतिकुष्टकुल अर्थात् लो
क विरुद्धडुगंछनीय कुल दो तरहके कहे एकतो सू
तक युक्त अल्पकालिक डुसरा अनोज्य यावत्क
थिक इत्यादि कुलोमें साधु आहारादि अर्थे प्रवेश
न करे, तहा जो यवन चामालादिकोंके कुलवर्जित
करे वह सब डुगंछनीय कुल है अरू श्री नगवती
प्रमुख सिद्धांतोमे जो उच नीच मध्यम कुलके
घरकी गोचरी मुनीकु करणी कही, सो अडुगंछनी
य कुलके घर है, क्योंकि जैनसिद्धातोंमें अतकु
लतो वरूंट गींपादिकोका और प्रातकुल चामा
लादिकोंका इत्यादि डुगंछनीय कुल वर्जके और
सब कुलमें मुनि गोचरी करे, तातें श्री नगवत्यादि
सूत्रोमे यवनोगादिकोंके कुलतो उंच कहेहे॥१॥
अरू अल्प मनुष्य अगंनीर आशयवाले वह तुछ
कुल ॥१॥ तथा मनीश्वर धनरहित कुल सोदरिद्र
कुल ॥२॥ अथवा तर्कण वृत्तिके करनेवाले सो

कृपणकुल ॥३॥ और तथाविध लिंगिक भिक्षा वृत्तिके करनेवाले वह भिक्षुक कुल ॥४॥ यह चार कुलवाले अडगंछनीय है पण तुछादि वृत्तिसें नीच कुल कहे जाते है ॥२॥ तथा वैश्य वणीजा दिकोंका कुप वह मध्यमकुल कहे जाते है॥३॥इसवा स्त ऊंच नीच मध्यमकुल घरसमुदाणीए भिक्खारि याए अडिसमाणे ॥ इस पाठसें पूर्वोक्त ऊंच नीच मध्यम अडगछनीयकुल ग्रहण किये जाते है तथा इस पाठमे (घरसमुदाणीयस्स ) इस वचनके आ श्रयसें ऊंच नीच मध्यमकुलका कोई ऐसाभी अर्थ करते है कि,इस पाठमे कुल शब्द है सो समूह वाचक है तातें इस पाठका ऐसा अर्थ करना कि यहाँ इश्वर धनवतोके ऊंचे२ हाट हवेली प्रमुख घरका समूह, वह उचकुल घर समूदान कहावे॥१॥ और अनीश्वर निर्धन दरिद्रजोकोंके छोटे घरसमु दाय वह नीचकुल घरसमुदान कहावे ॥२॥ तथा

ईश्वर धनवंत भी न होयँ अरु अनीश्वर निर्द्धन दरिद्री भी न होय ऐसे लोकोंके अति ऊंचेभी नहीं अरु नीचेभी नही ऐसे मध्यम स्वभावके घर, यह मध्यमकुल घरसमुदान कहावे ॥३॥ श्री आचारांग प्रमुख सिद्धांतोंमे जुगुप्सनीय कुलवर्जन किये ताते यह अर्थभी अजुगुप्सनीय कुला श्रयी मिलता है, परंतु इस अर्थका शाखी कोइ पूर्वाचार्योंका ग्रंथ मेरे दृष्टिगोचरमे न भया तातें कोइ प्रश्नमे यह अर्थ होयतो यथार्थ है अ न्यथा पूर्वोक्त अजुगुप्सनीय उग्र कुलादिक चार नीचकुलका अर्थ और वैश्य वणिजादिकभोक मध्यमकुलका अर्थ ग्रहण करनाही श्रेय है, पण जुगुप्सनीय चामारादिक नीचकुलोंका अर्थ ग्रहण करना विपरीत है ॥ इति पंचत्रिंशत्तम प्रश्नो त्तर संपूर्णम् ॥३५॥

प्रश्नः–॥३६॥ फेर मूलसूत्रमें एसा कहा ॥य त्थाव॥ अन्नायउछ पुलनिपुलाए॥ द्वितियपाठ॥ अन्नायउछंचरईविसुद्धं इत्यादिपाठके केचित् मुग्ध जन ऐसा अर्थ करते हे के इसमे जैनी सिवाय अन्य जातकीभी गोचरि करणी कही है सो इसका प्रमाण केसे ?॥३६॥

उत्तर –मूलसूत्रका दोनो पाठके अर्थसे तो जैनी सिवाय अन्यजातकी गोचरी करनीभी एकातसे स्थापित नही होती हे और नही करनीभी एकातसें स्थापित नहीहे क्योंकि अदुगछनीय मिथ्या दृष्टियोके कुलोंमे जैनी सिवाय गोचरी नहीं करना ओसा निषेध कोई जैनशास्त्रोमे नहींहे प्रत्युत धर्मघोसादी वहुत अणगारोने अदुगछनीय अन्य मिथ्यादृष्टीयोके कुलोमे गोचरी करी, ओसा लेख हे तो जैनीयोंके तहा गोचरी करना तो सिद्धही हे तातें कोइ मुग्धजन ओसा कहतेहे कि जैनी

सिवाय अन्यजातकीहींज गोचरी करणा तथा जैनीकोही करना ऐसा एकांत करके अन्याय उठ इत्यादि मूलसूत्र पाठका अर्थ करतेहै सो विपरीत है, क्योंकि इन दोनो सूत्रपाठका अर्थतो श्रीदशवैकालिक वृहद्वृत्तिमें इसमुजब है (तथाच तत्पाठ) अन्नायंतिसूत्रव्या० अज्ञातोंठ परिचया करणेनाज्ञात सननाजेोठ गृहस्थोऽरितादि चर रपटित्वा नीतभुक्तेच नतु ज्ञातस्तद्बहुमतनिति एत दपिशुद्धमुञ्छमादि दोप रहित नतद्विपरीत एतद पियापनार्थ सयमजारोद्वाहि देहपाजनाय नान्यथा समुदान चोचित जिक्षाजब्धच नित्य सर्वकालन तुज्ञमप्येकत्रैव बहुजब्धे कादाचित्कया एवंभूतमपि विनागत श्रजव्धानासायन परिदेवयेत् नखेदया यात्यथा मदजाग्योहन सोजनोयवादेश इति एव विज्ञागतश्च जब्धाप्रायोचित नचिकित्सतेन श्लाघा करोति सपुण्योह शोजनोयंदेश इत्येवस पूज्य इति

सूत्रार्थ॰ ॥४॥ उवहिम्मि सूत्रंव्या॰ उपधौवस्त्रादि लक्षणे अमूर्छितस्तादृद्दपयमोहत्यागेन अगृद्ध॰ प्रतिबंधाभावेन अज्ञातोंछंचरति भावपरिशुद्ध स्तोकस्तोक मित्यर्थ॰ पुलाकनिःपुलाकइति संय मासारतोत्पादक दोपरहित. क्रयविक्रयसन्निधि भ्योविरतः द्रव्यभाव भेदभिन्न क्रयविक्रय पर्यंत स्थापने भ्योनिवृतः सर्वसंगामगतश्चयः अपगत द्रव्यभावसंयमश्चयः सन्निक्षुरिति सूत्रार्थः ॥१६॥ (इन दोनो सूत्रव्याख्याका आशय यहहै कि) क्षेत्र मे पतितकणादिक चुटन करना सो उंछ कहावे ऐसें परिचय नही करनेसे तथाविध अज्ञात प्रातकुलमे स्तोकस्तोकतम गृहस्थोक्षरितादि आ हारादिका अटन करके शुद्ध उद्गमादि दोषरहित भोजन करना वह अज्ञातउंछ कहावे ऐसा अज्ञा तउंछका अर्थ पूर्वाचार्योंने कराहै, परंतु जैती अजे नीका विशेष नही करतेहैं वास्ते अन्नाय उंछचर

इविसुद्धं इन दोनो सूत्रपाठसें जैनी सिवाय अन्य जातकी गोचरीका एकात विधिनिषेध नही होता हे पीछे बहुश्रुत पूर्वाचार्य कहे सो प्रमाण ॥ इति षटत्रिंशत्तमप्रश्नोत्तर संपूर्णम् ॥३६॥

---

प्रश्न –॥ ३७ ॥ नवमा अनुत्तरोपपातिक सूत्रका॥२४॥मा अध्ययनमे कहाकि धन्नाअणगारने एसा अभिग्रह लिया ॥परपाठ ॥ छठखमणपारणगसि कप्पई मे आयबिल पडिग्गाहित्तए नो चेवण अणायबिल तपिय ससठ नो चेवण असंसठ सेवियउज्झियधम्मिय नोचेवण अणुज्झियधम्मिय तपिय जं अन्नेबहवे समणमाहण अतिही किवण वणिमग्ग नावकखती ॥ इत्यादि पाठ कहा जिसमें (येकेचिदङ्गपुरुषा.) वासी कुथो चाटणादी आहारकी स्थापना करते हे, सो इस्का समाधान केसें ? ॥३७॥

उत्तर-धन्नाअणगारनेतो छठके पारणे आं
यबिलके अभिग्रहमे (श्रमण) निग्रंथादि (ब्राह्मण)
प्रसिद्धजाती (अतीथी) जो भोजनकालमे आये
हुये प्रावुणिक कृपण दरिद्र वनीयक याचक वि
शेष इत्यादि वांछे नही खुरचनादिक बचा हुवा आ
हार तथा खड्डादिकमे कुहे हुवे धान्य सदृश स्वाद
वाला उज्झित आहार ग्रहण किया ऐसा टीका
प्रमुख जैनग्रथोंमे कहते है पण वासी कुया प्रमुख
आहार धन्नाअणगारने लिया ऐसातो कोई जैन
ग्रथमें नही है. तातें जो अनक्ष्के भक्षण करनेवाले
जिनप्रतिमा जिनवचनोत्थापक लोक अपनी
ऐब ढांकनेके लिये कुयुक्ती कर कहते है कि, धन्ना
अणगारने वासी कुया ऐठवाणा प्रमुखका आहार
लियातो हम लेवे इसमें क्या आश्चर्य है? ऐसे
कहके धन्नाअणगार प्रमुख महान्पुरुषोको असत्य
कलंक लगाके वह मूर्ख आप संसार समुद्रमे डूबते

अनक्रमे मक्खन सहित चार महाविगय खानेकी मना करी हे ॥२॥ और २२ अनक्ष्मे तो पाच उवरफल कहे तिनका नाम यह हे कि एकतो वडवृक्षके पीपु ॥ १ ॥ दुसरा पीपलाको पीपु २ तीसरा उवरकीपीपु ३ चोथा पारसपीपलकीपीपु ४ पाचमा कालाउवरकीपीपु ५ यह पाच नामके वृक्षके फल २२अनक्ष्मे अनक्ष कहेहे पण कउवर तथा पाकरी फल कहेनही, तथापि प्रवचनसारादि कोइग्रथके नापा तथा टवाकारोंने पचफलके ठेकाणे कोविदमी तथा प्लक्ष अरू पिलुकण इत्यादि नामके फल ग्रहण किये हे सोनी पीपल १ उंबर २ पिल्वादि ३ जाती विशेष फल हे तैसें कोइ नापा टबादिमे पाकरीफलनी लिखे होय तो वो नी कोइ देश विशेष नापासें नाम नेद हे तो नी पूर्वोक्त जाती विशेपही फल जानना ॥ ३ ॥ इति एकोनचत्वारिंशतमप्रश्नोत्तर सपूर्णम् ॥३९॥

वाले भुवनभान्वादि अनेक भव्य जीव द्रव्य चारित्रसे रहित तथा भ्रष्ट होकेभी परपरफल मोक्षकों प्राप्त हुयेहैं परतु अभव्यादिक तथा क्षयो पसमादिक पौद्गलीक दर्शनसे भ्रष्ट जीव शुद्ध द्रव्य चारित्र पालते हुये परपरासेंभी मोक्ष फल नही प्राप्तमान हुये अरू नही होंगें इस अनुभावसे इस गाथामें दर्शन जो सम्यक्तका उत्कर्षपणा और द्रव्य चारित्रका हीनपणा जणाया है ऐसा जैन शास्त्रोके न्यायसें हमारी बुद्धिमेतो भ्रातोहै पीछे बहुश्रुत कहे सो सत्य ॥ इति चत्वारिंशतम प्रश्नो तर सपूर्णम् ॥ ४० ॥

---

प्रश्न ॥४१॥ धर्म किसको कहणा १? और पुण्य किसको कहणा २? और दान किसको कहणा ३? ठाणागजीके १० मे ठाणे यत्पाठ ॥ दसविहे धम्मेपन्नत्ते गामधम्मे इत्यादि और नवमे ठाणे नव

हे पुन्ने पन्नत्ते अन्नपुन्ने इत्यादि और १० भेद
ानकेन्नी कहेहै इन तीनोका शब्दार्थ निश्चय
व्यवहार करि पृथक् पृथक् स्वरूप कहणा ॥४१॥

उत्तर। ( वह्रुसहावोधम्मो )॥ तथा ॥ धा
रयति दुर्गतौ प्रपततो जीवान् धारयति सुगतौवा
तान् स्थापयतीतिधर्म्मः उक्तंच ॥ दुर्गति प्रसृतान्
जंतून् यस्माद्धारयतेततः धत्तेचैतान् शुभेस्थाने
तस्माद्धर्म इतिस्मृतः।१।पुनः।चतुर्गतौपततप्राणीन्
धारणाद्धर्म उच्यते सयमादिदशविधः सर्वज्ञोक्तो
विमुक्तये ॥ १ ॥ इत्यादि जैनशास्त्रोक्त सामान्य
विशेष लक्षण वो धर्म कहावे. सो धर्म श्रुत चारि-
ादि भेद करिके अनेक प्रकारकाहै तथापि शुद्धो
योग करिके जीव अपना गुण पर्यायसें तदाकार
अेरममय प्रणमें वो वस्तुतासें धर्म कहावे. वो धर्म
चार प्रकारका है तद्यथा॥ धम्मोवत्थुसहावो खमा
दिभावोयदसविहोधम्मो रयणत्तयंचधम्मो जीवाणं

रक्कयंधम्मो ॥१॥ अस्यार्थः ॥ वस्तु और वस्तुका
जो स्वन्नाव जैसें कटुकादि वस्तुमे कटुता और
सक्कर प्रमुखमे मिष्टता स्वान्नाविक है तैसें चे
तनमे चेतनता स्वान्नाविक हे सो एक धर्म १ और
दूसरा खंति मद्दव अज्जव इस गाथामे दस प्रका
रका यतिधर्म कहा, वो धर्म२ तीसरा दर्शन ज्ञान
चारित्ररूप आत्मपणो प्रणमे वो धर्म३ चोथा जिन
आज्ञायुक्त जीवोंकी न्न्यनाव सहित दया पाले
वह धर्म ४ तथा ॥ फेर न्नी धर्मके चार न्नेद कहे है
प्रथम आचार धर्म १ दयाधर्म२ क्रियाधर्म३ वस्तु
धर्म ४ ॥ तहा प्रथम आचारधर्म आदरता हुवा
जीव अनाचारसें बचे और लोकमे न्नी यश प्रति
ष्ठा पावे अरू अन्यतीर्थिक न्नी जैनधर्मकी प्रसंश
करे जैनका आचारकु अनुमोदे ॥१॥ दूसरा दया
धर्म जो जिसिसें हिंसाका कर्म टले और सुन्न
पुण्य उपार्जन करके सुन्नगति पावे अरू परपरामे

मुक्तिका हेतु होय ॥२॥ तीसरा क्रियाधर्म जो सुन
क्रिया पोसह प्रतिक्रमण जिनपूजादिक वो विधि
शुद्ध क्रिया करते कर्मका काट उतारके नव तुछ
परंपरा करिके मुक्ति मार्गसें मिलावे ॥ ३ ॥
चौथा वस्तुधर्म तिसिसें वस्तुधर्म पाके स्वरूपा
चरण समकित पावे और पुण्य पाप कर्मकी
निर्जरा नीपजे ॥४॥ यह चार प्रकार धर्मरथके
चार पइये तुल्य है जैसें रथका चलणा पइये विना
नहीं होताहै तैसेही पूर्वोक्त आचारादि धर्म विन
धर्मरथका भी चलना नही होताहै और
शील तप भाव प्रमुख धर्म है सो तो इन
धर्मोके कारणरूप है अरू पूर्वोक्त धर्म सब
… है तिन धर्मोकु जो एक भी तुहे ‥
…ार्थ स्याद्वाद रीतीसे जो प्राणी पावे,
…धी होके सिघ्र सिद्धि वधु वरे ॥
…ात नयसे करि धर्मका स्वरूप

कि नैगम नयके मतसें तो सब धर्म है क्योंकि सब धर्मकु चाहते है अर्थात् इस नयके मतवालेने सबधर्म धर्मनाम कहके बतलाये तथा संग्रह नयके मतसें जो बड़ोंने अंगीकार करा वो धर्म अर्थात् इसनय मतवालेने भनाचारकु तजके कुलाचारकु धर्म माना अर्थात् जिस जिसका कल क्रमागत आया वो धर्म जानना ॥ दोहा ॥ भेख धारीकु गुरु कहे, पुण्यवतको कहे देव॥ कुलाचारकु धर्म कहे, यह है कर्मकी टेव ॥१॥ तथा व्यवहार नयके मतसें जो सुखका कारण वो धर्म कहावे अर्थात् इस नयक मतवालेने पुण्यरूप करणीकुं धर्म कहके माना तथा ऋजुसूत्र नयके मतसें उपयोग सहित उदास भावसें वैराग्यरूप परिणाम वह धर्म जानना अर्थात् इसनयके मतवालेने यथाप्रवृत्ति करणरूप परिणाम प्रमुखकु धर्म करके माना, सो तो प्रथम गुणठाणे मिथ्यादृष्टिके

नी होय तथा शब्दनयके मतसें जो अंतरगतका भासनरूप समकित वो धर्म कहावे, क्योंकि समकित जो हे सो धर्मका मूल हे तथा समभीरूढ नयके मतमें जीव अजीवरूप नवतत्त्व षटद्रव्य नय निक्षेपा प्रमाण उत्सर्ग अपवाद निश्चय व्यवहार द्रव्य भावका स्वरूप जानके जीव सत्ताकु ध्यावे अजीव सत्ताका त्याग करे, ज्ञान दर्शन चारित्ररूप शुद्ध निश्चयनय परिणाम वो धर्म कहावे अर्थात् इसनय मतवालेने साधक सिद्धरूप परिणाम वो धर्मपणे करके माना तथा एवंभूतनयके मतसें जो शुद्ध शुक्लध्यान रूपातीत परिणाम क्षपकश्रेणी कर्मक्षयका कारण, वह तो साधन धर्म जानना अरु जीवका मूल स्वभाव मोक्षरूप कार्य निष्पन्न सिद्धमें रहे वह धर्म जानना ॥१॥ तथा आत्माकुं अशुभ कर्मोंसें पवित्र करे वह पुण्य कहावे वह पुण्य आत्माके शुद्धोपयोग सहित मन वचन

कायाका योग प्रशस्त व्यापारसें तदाकार पूजा सामायिक दानादिक शुभयोग प्रवर्तनसे पुण्यबंध नीपजे, क्योंकि आत्माके दो उपयोग है एकतो शुद्ध दूसरा अशुद्ध तहा शुद्धोपयोगमे तो कुछ भेद नहीं है पण अशुद्धोपयोगका दो भेद है, एक तो सुभोपयोग१ दूसरा अशुभोपयोग२ तहां शुभो पयोगमे वर्तता जीव पुण्य उपार्जे अरू सुभगती पावे तथा अशुभोपयोगमे वर्तता जीव पाप उपार्जे अरू दुखरूप कुगति पामे और सुद्धोपयोगमे वर्तता जीव सिद्धगति पामे तहा सुद्धोपयोग तो जीवके सम्यक्त पाम्या पीछे होय अरू अशुद्धोप योग मिथ्यादृष्टि जीवोंके होय तिस्मे सुभोपयोग है सो सुद्धोपयोगका घरका है तातें मिथ्यादृष्टिके सुभ क्रिया होय पण शुभोपयोग नहीं होय तथा सम्यक्त जीवके शुभोपयोग होय वो अणइच्छक रूप होय अरू मिथ्यात्वीके शुभक्रियारूप शुभो

पयोग शुनाचाररूपे होय पण निदान अनिलाप सहित होय इसी वास्ते अशुनरूप कहाहे अरू सम्यक्‌दृष्टीके शुद्धोपयोगका घरका जो शुभोप योग वह अनिदान रूपे होय इसलीये सम्यक् दृष्टीके शुद्धोपयोग सो शुनमिश्रित होय तिस वास्ते तरतम नेदसें चौथा गुणागणासें लेके बार मातांई मिश्रोपयोग होय ने तेरमासे शुद्धोपयोग पूर्णपदें होके जीव सिद्धगती पामे अरू मिश्रोप योगसें पुण्यानुबंधी पुण्य निपजाके शुनगती शुन सामग्री जीव पामके परपरासे मोक्ष सामग्रिका मिलाप करे ॥ तथा ॥ कोई धर्म पुण्य एक माने तिनोकु हितशिक्षारूप उत्तर दान यहहे कि धर्म तो दर्शनमोहनीका क्षयोपसम ॥ तथा ॥ क्षयसें होताहे अरु पुण्य हे सो चारित्र मोहनीका उदयसे निपजता हे क्योंकि अविरतका उदय मंद होय तथा क्षयोपसम होय तव विरतिका उदय

होय जब पट्कायके जीव उपर दयाके परिणाम उपजे तिस्से पुण्य उपजे अरू पुण्य है सो वेदनी कर्मका सातافल जोगवाके वेदावे और धर्म है सो कर्मोकी निर्जरा करिके मोक्षफल प्राप्त करे तथा धर्म है सो आत्मा स्वनावजनित होय॥ अरू पुण्य तो बधरूप जोगवे तातें आश्रवरूप क्षयरूप है और मिथ्यादृष्टिके जी होताहै और धर्म तो स वर निर्जरारूप अक्षय है सो सम्यक् दृष्टिकेही होताहै ॥ तथा ॥ पुण्य अरू धर्म यह दोनु वस्तु जुदि है क्योंकि पुण्य तो अन्न पुण्यादि नव नेदसें निपजानेका जैनसिद्धांतोंमे कहाहै और सा उन्न गोयमणुङग ॥ इत्यादि बेतालीस प्रकारसें फल, जोगना है अरू धर्म॥ खति मद्दव अज्जव॥ इति गाथोक दस प्रकारसें नीपजता है तिसका फल मोक्ष है ऐसें गति जिन्नोपयोग जीन्न और फल जिन्नसें पुण्य धर्म जिन्न है. तातें अशुज प्रकृतीोंको

पलटाके शुभ पुद्गलपणे परिणामावे वो पुण्य कहाता है ॥ २ ॥ तथा ददातीतिदान ॥ अर्थात् देवे वो दान कहावे, वो दान दो प्रकारका है एकतो व्यव हारनयके मतसे ऊपरसें अरूचिपणे लाजसें सर मसें नय प्रमुखसें अपना ससारी मुतलव वास्ते दान देना, वो सर्व द्रव्यसें दान कहावे और ऋजु सूत्र तथा व्यवहारनयके मतसें मन वचन काया करिके एकचित्तसें साधु साधवी श्रावक श्राविकाकु अपनी शक्ति अनुसार दान देना, वो सब भावसें दान कहावे ॥तथा॥ शब्दनयके मतसें लक्खाण सहित ज्ञानका पढना पढाना सुनना सुनाना अपने तथा परके ज्ञानादिक वृद्धिकरिके ज्ञाना दिक रत्नत्रयीका लाभ आत्माकु देना, वो निश्चयसें भावदान कहावे ॥ ३ ॥ तथा श्री स्थानागसूत्रके दशमेगाणेमें दशप्रकारके धर्म इस मुजव कहेहै ॥नत्पाठ॥ दसविहेधम्मे प०तंजहा गामधम्मे नगर

धम्मे रठधम्मे पाखम्डधंम्मे कुलधम्मे गणधम्मे सघधम्मे सुयग्म्मे चरित्तधम्मे अत्थिकायधम्मे ॥ व्याख्या ॥ दसेत्यादि ॥ ग्रामाजनपदाश्रया स्तेपा तेपुवा धर्म समाचारो व्यवस्थेति ग्रामधर्म सच प्रतिग्रामभिन्न इति अथवा ग्राम इन्द्रियग्रामो रूढे स्तद्धर्मो विपयाभिलाष ॥१॥ नगरधर्मो नगराचार सोपि प्रतिनगरं प्रायो भिन्नएव।२।राष्ट्रधर्मो देशाचार ॥३॥ पाखम्डधर्म पाखम्डिनामाचार ॥४॥ कुलधर्म उग्रादि कुलाचारो ऽथवा कुलचान्द्रादिक माहर्तांना गच्छसमूहात्मक तस्य धर्म समाचारी॥५॥ गणधम्मों मल्लादिगणव्यवस्था जैनाना वा कुलसमुदायोगण कोटिकादिस्तुद्धर्मस्तत्समाचारी ॥६॥ सघधर्मोगोष्टीसमाचार आर्हताना, वा गणसमुदायरूपश्चतुर्वर्णो वा सघ स्तद्धर्म स्तत्समाचार ॥७॥ श्रुतमेवाचारादिक दुर्गतीप्रपतज्जीवधारणाद्धर्म श्रुतधर्म ॥८॥ चयरिक्तीकरणाचा

रित्र तदेवधर्म्मश्चारित्रंधर्मं ॥९॥ अस्तयः प्रदेसा स्तेषां कायोराशिरस्तिकाय· सएवधर्मो गतिप र्याये जीवपुज्ञलयोर्धारणादित्यस्तिकायधर्म ॥१०॥ भावार्थः ॥ दस प्रकारसे धर्म कहा वो कहेहै कि ग्राम जो जनपदाश्रय तिनोंका धर्म तथा तीनोके विषें जो धर्म समआचार व्यवस्थित अर्थात् अच्छा आचारकी व्यवस्थावंत वह ग्राम धर्म कहावे सो प्रतिग्रामोंमे भिन्न भी होय अथवा ग्राम जो इंद्रि यग्राम तिनोंका जो धर्म विषयाभिलापरूप वहभी ग्रामधर्म कहावे ॥१॥ तथा नगर जो कर रहित तिनोंका आचार सोभी प्रतिनगरप्रायें भिन्न होय वह नगरधर्म कहावे ॥२॥ और देशाचार जो भाषा वेशादि प्रवृत्ति वह राष्ट्र अर्थात् देशाचारधर्म क हावे ॥३॥ पुनपाखंमी जो भरमा भगत कुलिंगी प्रमुखोंका आचार वह पाखंमधर्म कहावे ॥४॥ अरू उग्रादि कुलोका आचार अथवा कुल जो

चांद्रादिक आर्हतोंका गच्छ समुहात्मक तिनोंका
दसविध सामाचारी प्रमुख जो धर्म वह कुलधर्म
कहावे ॥५॥ तथा मल्लादि समुदायोंकी व्यवस्था
अथवा जैनोंका एक आचार्य संतती कुलोंका समु
दाय कोटिकादि गच्छ तिनोंकी समाचारी प्रमुख
जो धर्म वो गणधर्म कहावे ॥६॥ अरु गोष्ट जो
पाचजणोंका विचारित्समाचार अथवा आर्हतोंका
गणसमुदायरूप चतुर्विधसंघ तिनोंका आचार धर्म
वह संघधर्म कहावे ॥७॥ और दुर्गतिमे गिरते हुवे
जीवकु धारण करे ऐसा श्रुत जो द्वादशांगीरूप
धर्म वह श्रुतधर्म कहावे॥८॥ अथ च कर्मोका चयकु
रिक्त करे वो चारित्र पंच महाव्रतरूप वोहीज धर्म
वह चारित्रधर्म कहावे ॥९॥ तथा अस्ती जो प्रदेश
तिनोंकी काया जो रासी वह अस्तीकाय तिसका
धर्म जो गतीपर्यायादि करिके जीव पुद्गलकु धारण
करे वो अस्तीकाय धर्म कहावे ॥१०॥ यह ग्रामादि

दसों प्रकारके धर्म अपने अपने गुणपर्याय स्वस्वनाव से तो नयकीअपेक्षासे सब व्यावहरिक निश्चयि क हे, तिनका पृथक् पृथक् विचार लिखनेसें वहुत ग्रंथकी वृद्धि हो जाय, ताते किंचित् स्वरूप मात्र लिखते हैं प्रथम मूल धर्म दो प्रकारका हैं एक व्यावहारिक, दूसरा नैश्चयिक. तहा व्यावहारिक धर्म दो प्रकारका है एक लौकिक, दूसरा लोको त्तर, प्रथम लौकिक व्यावहार धर्म दो प्रकारका हे एकतो शुनआचाररूप दूसरा अशुन आचाररूप तहां अशुन आचारतो ससार हेतु धर्म अर्थात्शु भाशुन विकार रूप राग द्वेष अज्ञान मिथ्यात्व विषय कषाय निद्रा विकथा हासी कुतुहल अहं कार ममकाररूप अनेक प्रकारकी कुचेष्टा करनी, वो सब ससारवृद्धिके कारण लौकिक अशुन व्यवहार धर्म है और परलोकके लिए तप जप दान कुगुरु कुदेवोका यज्ञ यागादिक पूजा नक्ति

प्रनावना इंद्रियदमन वैरांग्यादि अनेक प्रकारव
शुनचेष्टा करनी, वो लौकिक शुनाचार व्यवह
र धर्म है ॥ अथवा तप संयम पूजा प्रनावना न
क्ति इंद्रियदमन वैराग्य नावना इत्यादि अनेक
प्रकारकी कष्टक्रिया करे है, पण इस नवमें यश
कीर्ति लक्ष्मी पुत्र कलत्र परिवार ऋद्धिकी वांग
से अथवा परनवमें शेठ सेनापति शाहुकार देवता
इंद्र वासुदेव चक्रवर्त्यादिककी पदवी पानेकी वा
ठासें लोकोत्तर धर्म जो अर्हतोका धर्म आराधन
करे, यह लोकोत्तर व्यवहार धर्म है, पण अज्ञान
दशासें करिके यह पूर्वोक्त सब कृत्य लौकिकमे मि
ले ताते यह नी लौकिक शुनाचार व्यवहार धर्म
है और लौकिकसें उत्तर च्यारगतीरूप संसारकी
चाठा रहीत एक मोक्षमार्गको साधे, वो लोकोत्तर
धर्म कहावे एतावता समकिती देशविरती बठे
सातमे गुणठाणे वर्तनेवाले साधु मुनिराज ऐसे

यावत् छद्मस्थ अवस्थां लगि सब जीव अर्हंत आज्ञा युक्त तप जप दान पूजादिक शुभोपयोगी सब शुभयोगके कृत्य, वो लोकोत्तर शुभव्यवहारा दिक धर्म कहावे तथा फेर परदर्शनीयोंका मतके अनुयायी जो धर्म्मानुष्ठान करना, वो व्यवहारसें लौकिक धर्म कहावे और एकात मार्ग बाह्यकरणी के उपर राचे परंतु अंतरग ज्ञानहीन आत्मधर्मकी उंळखाण रहीत सो निश्चयसें लौकिक धर्म कहा वे अरू जीवके अतर सत्तागतमे रहा अनंतचतुष्टयरूप ज्ञान दर्शन चारित्र वीर्यरूप अनत धर्म रहा हे, वो कर्मोंसे आवरीज रहा हे जैसें बदल-आमे आयेसें सूर्यकी काति दब जाती हे पण अतरमें देदीप्यमान काति है, तैसें आत्माके कर्मरूप बद्दल आमे आनेसें आत्माकी काती दब गइ, पण अंतरग आत्माकी काति सूर्यकी तरह देदीप्यमान हे, वो लोकोत्तर निश्चय धर्म कहावे अथवा पूर्वोक्त

धर्म निरावरण प्रगट करनेके वास्त साध्य एक
स्वछ निर्मल अरिहतादिकोका रखके जो जो बाह्य
व्यवहार क्रियारूप व्रत पच्चखाण तप जप जिन
पूजादि करनी, वो लोकोत्तर व्यवहार धर्म कहावे।
ऐसें लौकिक लोकोत्तर निश्चय व्यवहारनयकी
अपेक्षासें तो श्रीस्थानागोक्त दश प्रकारके धर्म नै
श्रयिक व्यावहारिक दोनु ही हे और आत्मधर्मकी
अपेक्षामें यह दसौही धर्म व्यावहारिक है लेकिन्
ग्रामादिकसें लेके सघ धर्मतक सात धर्मतो व्या
वहारिक ही सभव है और आठमा नवमा धर्म
निश्चयीक सभव है और दशमा नैश्चयिक व्या
वहारिक दोनु सभव है तत्व बहुश्रुताविदति ।
॥ ४ ॥ तथा श्रीठाणागजीके नवमे ठाणेमें नव
प्रकारके पुन्य इस्मुजब कहे है ॥ तत्पाठ ॥ नव
विहे पुण्णे प० तजहा अण्णपुन्ने पाणपुन्ने वत्थपुन्ने
लेणपुन्ने सयणपुन्ने मणपुन्ने वयपुन्ने कायपुन्ने न

मोक्कारपुन्ने ॥ व्याख्या ॥ पुन्नेत्यादि ॥ पात्रयान्न
ानाद्यस्तीर्थंकरनामादिपुण्यप्रकृतिबंध· तदन्नपु
ण्यमेव सर्वत्रनवरं ॥ लेणंति ॥ लयन गृहं शयनं
संस्तारकं मनसागुणिषु तोषात् वाचा प्रशंसना
त् कायेन पर्युपासनात् नमस्काराच्च यत्पुण्यन्तन्म
न पुण्यादीति उक्तंच अन्नपानंच वस्त्रंच आलय·
शयनाशनं शुश्रुषावन्दनतुष्टि. पुण्यंनवविधंस्मृत
मिति ॥१॥ भाषा—नव प्रकारका पुण्य कहा वह
कहते है कि पात्र प्राणी अन्नदानादिकके देनेसें ती
र्थंकर नामादि पुण्य प्रकृतिका बंध होय, वह अन्न
पुण्य कहावे. ऐसें सब ठिकाने जानना १ पाणी
का पुण्य २ वस्त्र पुण्य ३ लयनजो गृह वस्ती
पुण्य ॥ ४ ॥ शय्या संस्तारक आसन पाट प्रमुख
का देना वह शयन पुण्य ॥५॥ मन करके गुण
वानके विषे संतोष तुष्टि वह मन पुण्य ॥६॥ व
चनसें गुणीकी प्रशंसा वह वचन पुण्य ॥ ७ ॥

कायासे करके गुणीकी पर्युपासना सेवा वह
कायपुण्य ॥८॥ गुणीको नमस्कार करना, वह नम
स्कार पुण्य कहावे ॥ ९॥ यह नव प्रकारके पुण्य
पात्र आश्रयी तो तीर्थंकरादि पुण्यानुवधि पुण्य
प्रकृति फलका देनेवाला है और अन्यको दिये
अन्य प्रकृति पुण्यका फलका देनेवाला है॥ अब
निश्चय व्यवहारसें पुण्यका स्वरूप भावसें तथा
द्रव्यसें अरु द्रव्यसें तथा भावसें ओलखावे है
भावसे तो पुण्य वाधनेका नव प्रकार है तहा प्रथ
म साधु साधवी श्रावक अरु श्राविका रूप चतु
र्विध श्री सघको अतरग राग सहित अन्न देनेकी
रूची वो अन्न पुण्य जानना दूसरा पाण पुण्य जो
साधु साधवी प्रमुखको प्रासुक जल देनेकी रूची
जाननी तीसरा लेण पुण्य जो साधु साधवी प्रमु
खको रहनेके लिये निरवद्य स्थान देनेकी रुची चोथा
पुण्यणसय जो साधु साधवी प्रमुखको सोनेके

पाट तथा वेठने वास्ते बाजोठ प्रमुख देनेकी रु
ची. पांचमा वस्त्र पुण्य जो साधु साधवी प्रमुखको
कंपने कंबली आदिक धर्मोपकरण देनेकी रुची
छठा मन.पुण्य सो जगतके जीवोंका मनसें करके
अच्छा चिंतना अर्थात् सब जीवको धर्मसेयुक्तकर
कर्मरूप दुःखसे मुक्तकर सुखिसे मोक्ष नगरमें प
हुंचा दे, ऐसी भावना मनसें जिस जीवको होतीहै
वह जीव जिननामकर्म उपार्जन करता है सातमा
वचन पुण्य सो मिठा मनोहर प्रीतिकारी हितका
री सूत्रमर्यादासे आज्ञा प्रमाणे घणा जीवोके
उपकारक वचनसें बोलानेकी रुचि. आठमा काय
पुण्य सो पूंजना प्रमार्जना तथा साधु साधवी प्रमु
ख चतुर्विध श्रीसंघका विनय वैयावच्चके विषे
काया प्रवर्त्तावनेकी रुचि. नवमा नमस्कार पुण्य
सो श्रीतीर्थंकर केवली गणधर आचार्य साधु सा
धवी प्रमुख गुणी जीवोंको कृतकर्म अर्थात् वंदना

नमस्कार करनेकी रुचि इस रीतिसें नव प्रकारका
जिस जीवको चित्तमें भाव ऊपजे, वह भावपुण्य
नैश्चयिक कहावे अरु भाव पुण्यकी चिक्कासें
जीवकी सत्तामे शुभ कर्मका दलिया लगे, वह व्या
वहारिक द्रव्य पुण्य कहावे और द्रव्य पुण्यके द
लिये सत्तामे बधाणा वो आगे भावपणे मनुष्य
देवताका भव पामके बेतालीस प्रकारसें मिठावि
पाकसें जीव भोगवे, वह व्यावहरिक भावपुण्य क
हावे तथा निश्चय व्यवहार सात नयसें करके पु
ण्यका स्वरूप कहा है कोइ जीवने ऋजुसूत्र नयके
मतसे शुभ परिणाम करी व्यवहार नयके मतसे
पुण्यरूप आश्रवका दलिया ग्रहण करी संग्रहनय
के मतसें प्रकृतिरूप सत्तापणे बांधे उनकु अजीव
कहना अरु वो दलिये नैगमनयके मतसे करी
तीनुकाल एक रूपपणो जानना इस रीतिसें ऋ
जुसूत्र व्यवहार संग्रह अरु नैगमनय यह चार न

यसें करके जीव द्रव्य पुंण्य उपार्जन करे, और
नाव पुण्यतो जो पुण्यका दलिया शब्द नयके
मतसें स्थिति पाकनेसें उदयरूप नावमें प्रगट मा
न होय तथा समनिरूढ नयके मतसे सर्व पर्या
य प्रवर्त्तना रूप वस्तु प्राप्त हुआ और एवं
भूतनयके मतसें पुण्यका पर्यायरूप सब वस्तु
जीव नोगने लगा, ऐसे निश्चय व्यवहार सात नयें
करके पुण्यका स्वरूप जानना ॥ ५ ॥ तथा श्री
स्थानांगजीके दशमेगाणे दस प्रकारके दान इस्मु
जब कहे हैं ॥ तथाचतत्पाठः ॥ दस विहेदाणे
प० ॥ तंजहा अणुकंपासगहेचेव नयाकालुणिए
तिय लज्जाएगारवेणच अधम्मेपुणसत्तमे ॥ १ ॥
धम्मेयअठमेवुत्ते काहीईयकयंतिय ॥ व्याख्या ॥
दसेत्यादि अणुकपेत्यादि श्लोक. सार्द्ध. ॥ अणुक
पेति ॥ दानशब्दसंबंधादनुकंपयाकृपयादानं
दीनानाथविषयमनुकम्पादानमथवाऽनुकंपातो य

द्दानन्तदनुकंपैवोपचाराडक्तंच वाचकमुख्यैरुमा
स्वातिपूज्यपादैः कृपणेनाथदरिद्रे व्यसनप्राप्ते
चरोगशोकहते यद्दीयतेकृपार्थादनुकंपातद्भवेद्दानं
॥ १ ॥ संग्रहणसंग्रहो व्यसनादौसहायकरण तद
र्थंदान संग्रहदानमथवाऽन्नेदाद्दानमपि संग्रहउच्य
ते आहच अभ्युदयेव्यसनेवा यत्किंचिद्दीयतेस
हायार्थं तत्संग्रहतोभिमत मुनिभिर्दानंनमोक्षाये
ति ॥ २ ॥ तथाभयाद्दानन्तद्भयदानम्भयनिमित्त
त्वाद्दादानमपि भयमुपचारादिति उक्तंच राजारक्ष
पुरोहित मधुमुखमावल्लदण्डपाशिषुच यद्दीयतेभया
र्था तद्भयदानचविज्ञेयमिति ॥ ३ ॥ कालुणिएइय
त्ति ॥ कारुण्यं शोकस्तेन पुत्रवियोगादिजनितेन
तदीयस्यैवतल्पादे सजन्मान्तरेसुखितोभवत्विति
वासनातोऽन्यस्यवा यद्दानतत्कारुण्य दान कारु
ण्यजन्यत्वाद्दादानमपि कारुण्यमुक्तमुपचारादि
ति ॥ ४ ॥ तथा लज्जया ह्रिया दानं यत्तल्लज्जादा

नमुच्यते उक्तच अभ्यर्थित.परेणतु यद्दान जनस
मूहमध्यगतः परचित्तरक्षणार्थं लज्जयास्तल्लज्जादान
मिति ॥ ५ ॥ गारवेणचेति ॥ गौरवेण गर्वेण यद्दी
यते तद्गौरवदानमिति उक्तच नटनर्त्तमुष्टिकेभ्यो
दानसंबंधिबन्धुमित्रेभ्य. यद्दीयतेयशोर्थं गर्वेणतुत
द्भवेद्दानं ॥ ६ ॥ अधर्म्मपोषकदानमधर्मदान म
धर्मकारणत्वाद्वाधर्मएवेति उक्तच हिंसानृतचौर्यो
द्यतपरदारपरिग्रहप्रसक्तेभ्य' यद्दीयतेहितेषा तज्जा
नीयादधर्मायेति ॥ ७ ॥ धर्मकारणं यद्धर्मदानं
धर्मएववा उक्तच समतृणमणिमुक्तेभ्यो यद्दानदीय
तेसुपात्रेभ्य' अक्षयमतुलमनन्तं तद्दानम्भवतिधर्मा
येति ॥ ८ ॥ काहीइयत्ति ॥ करिष्यति कचनोप
कार ममायमितिबुद्ध्या यद्दानं तत्करिष्यतीति दा
नमुच्यते ॥ ए ॥ तथा कृतंममातेनतत्प्रयोजनमि
ति प्रत्युपकारार्थयद्दानं तत्कृतमितिदानमुच्यते
उक्तच शतशः कृतोपकारो दत्तंचसहस्रशोममाने

न अहमपिददामिकिंचि त्वंत्युंपकारायतद्दानमिति ॥ १० ॥ भावार्थ ॥ धनादि वस्तु देना वो दान कहावे ऐसा दान शब्द सबधसें अनुकंपा जो कृपा अर्थात् दयालुहोके दीन अनाथको दान देना वो अनुकंपादान कहावे अथवा अनुकंपासे जो दान वह उपचारसें अनुकंपाही कहावे कहा है वाचकमुख्यश्रीउमास्वाती पुज्यपादने कृपण अनाथ दरिद्री कष्टमें पमा हुआ रोग शोकसें हत प्रहत हुये इत्यादिकोको जो देवे दया करके दान वह अनुकंपादान कहावे ॥१॥ अथवा कष्टादिक में सहायके लिये जो देने योग्य वस्तुका संग्रह करके जो दान देना अथवा संग्रह अभेद ते वो दान भी संग्रह दान कहावे. कहा है कि अभ्युदय कष्टमें जो कछु देवे सहायके लिये उस दानको महंत मुनीयोंने संग्रह ऐसा नामसें अनिमत्त क परंतु मोक्षके लिये अनिमत नहीं करा है॥

॥२॥ तथा भयसे जो देना अथवा भयनिमित्त जो देना, वह उपचारते भयदान कहावे. कहा है कि राजा आरक्ष जो कोटवाल राजपुरोहित मधुमु खचुगलखोर दंडपाशिक इत्यादिकको भयसे जो कछु देना, वो भयदान जानना ॥ ३ ॥ और पुत्रादि वियोग हुयेतें जन्मांतरमे ये मेरे पुत्रादि सुखि होगे ऐसी वासना ते अन्यको मथारादि जो दान देना, वह कारुण्य कहते शोक जनित जो दान वह उपचारतें कारुण्यदान कहावे ॥ ४ ॥ तथा लज्जासे जो दान देना, वह लज्जादान कहा वे कहा है कि किसीको कोई प्रार्थना करे ते बहु त लोकोंका समुहमें रहा हुआ औरका चित्त र रक्षणेके लिये जो दान देना, वह लज्जादान कहावे ॥ ५ ॥ अथवा गर्व अहंकारसे देना, वह गौरव दान कहावे कहा है कि नट नर्त्तक नर्त्तकी वेश्या प्रमुख वा मुष्टिक जो मल्ल अथवा बंधु मित्रादि

सबंधियोंको जो अपने यश कीर्तिके लिये देना, वह गर्वदान कहावे ॥६॥ अधर्म जो पापका पोषक अधर्म कारणपणाते पापीको पोषणा वह अधर्म दान कहावे कहा है कि हिंसाका करनेवाला, फूठ का बोलनेवाला, चोरीका करनेवाला, जुआका र मनेवाला, परस्त्री गमनका करनेवाला, परिग्रहमे आसक्त जो लोभी इत्यादिकोंको जो देना, वह अ धर्म दान जानना ॥ ७ ॥ धर्मके कारण देना अ थवा धर्म वोही दान, वह धर्मदान कहावे. कहा है कि सरिखा हे तृण और मणि जाके ऐसा निर्लोभी सुपात्रको देना, वह अक्षय अतुल अनंत फलका देनेवाला ऐसा दान धर्मरूपी होय ॥८॥ तथा यह मेरे उपर कुछ उपकार करेगा ऐसी बु द्धिसे देना वह करिष्यतिदान कहावे ॥९॥ अथवा करा इसने मेरे उपर उपकार जिस प्रयोजनके अर्थे अर्थात्प्रत्युपकारके लिये जो देना, वह कृत

दान कहावे कहा है कि इसने सेकमो वखत मेरे ऊपर उपकार करा और हजारों वखत मेरेको धन धान्यादि दिया तो में नी कुछ देवं ऐसी बुद्धिसे दान दे, वो प्रत्युपकार दान जानना ॥ १० ॥ इन दश दानोंमे एक धर्मदान सिवाय सब शुनाशुन व्यावहारिक दान है और एक धर्मदान हे, सो शुद्ध व्यवहारका घरका शुन व्यावहारिक अथवा शुद्ध नैश्चयिक दान है ॥ ६ ॥ इति एकचत्वारिंशत् प्रश्नोत्तरं संपूर्णम् ॥ ४१ ॥

---
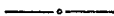
प्रश्न—॥ ४२ ॥ दान १ सील २ तप ३ और नावना ४ इन चारोंका व्यवहारमे स्वरूप क्या? और निश्चयमे स्वरूप क्या? ॥जुस०प्र०॥ए॥

उत्तर—अंतरंग परिणाम विना ऊपरसे अरूचिपणे लाजसे सरमसें जय प्रमुखसें दान देना, ये सब व्यवहार नय मतसें द्रव्य दान जानना

अरु फेर नी ऋजुसूत्र तथा व्यवहार नयके मतमें मन वचन कायासें करके एक चित्ते साधु साधवी श्रावक श्राविका प्रमुखको अपनी शक्ति अनुसार दान देना, वह सर्व नावदान जानना तथा ऋजुसूत्र अरू व्यवहार नयके मतसें मन वचन कायासें करी एक चित्ते अनयदान सुपात्रदान अनुकंपादान उचितदान कीर्तिदान रूप पांच प्रकारसें दान देना, वह सब द्रव्यदान जानना तथा शब्द नयके मतसें जीव अजीव रूप षट्द्रव्य नवतत्वका जाणपणा करणा तथा अपना जीवको अरू शिष्यादिकको प्रतीत कराके समकित रूप रत्नका दान देना, वो सब निश्चयसे नावदान कहा वे ॥१॥ तथा व्यवहार नयमतमें शीलगुणस्वरूप जो अंतरंग प्रणामविना उपरसें व्रतका उच्चार करे अथवा लोक लाजसें कुल मर्यादासे यशकीर्ति रूप शोनाके लिये अथवा परवशपणे राजादिकका

नयशे शीलपाले पण'अंतरग परिणामकी आतुर
ता रूप चपलता मटी नही वो व्यवहार नयकेम
तसे द्रव्य सुशील जानना तथा ऋजुसूत्रनयकेम
तसें मन वचन अरू कायासें करिके नव वाम्
अगारा भेद सहित शील पाले वो भावसें शील
कहावे तथा फेर भी प्रकारातरसे निश्चय व्यव
हारसे शील देखलावे हे ऋजुसूत्रनयके म
तसें मन वचन कायासें करिके पाच इंद्रियों
का तेवीस विषय सेवे नही सेवावे नही
सेवतेकुं अनुमोदे नही तथा मनुष्य तिर्यंच अरू
देवता संबधि विषयकी वांछा करे नही करावे
नही अनुमोदे नही वो ऋजुसूत्र तथा व्यवहार
नये करी द्रव्य सुशील जानना तथा शब्दनयके
मतसें जोते तो अपना आत्मा अपना ज्ञानादि
अनंत गुणाका भोगी है सो परभावकुं भोगवे
तिस वास्ते तिसकुं भावमैथुन कहना वो सब पर

नाव नोगीपणे नोगवनां नही अरू अपनी आत्मा नि कर्मी करनेकेलिये परनाव साध्यपणे ग्रहे पण अग्राह्यपणे अरमणिकपणे माने अरू औसा चितवेके यह आत्माकी भूल है औसी री तसें आत्माकु निदता हुवा औसें कहेकि यह परनावकु अनत जीवोने अनती वखत लेके नोग वके वमन करा वो मुझकों ग्रहना नोगवना घटे नहीं औसे सव परनाव नोगीपणा तजके स्वनाव नोक्तापणे रहे वो शब्द निश्चयनयके मतसें भाव सुशील जानना तथा औरनी प्रकारातरसें व्यव हार निश्चयसें शीलकी ओलखाण कहेहै जो पुरुष परस्त्रीका परिहार करे तिसकु व्यवहारसे शीलवत कहना अर्थात् साधुके सर्वथा स्त्रीका त्याग है तथा गृहस्थके हस्त परणी हुई स्त्रीकी छुट रखके अरू परस्त्रीका पच्चख्खाण करे सो सब व्यवहार नयसें शील जानना और जो जीव

अंतरंग विषय अभिलाषाका त्याग तथा मनकी तृष्णाका त्याग करिके अपनी आत्मपरिणति के विषें रमण करे है पण परपरणतिमे पैसता नही है अरू अपना गुणाका चितन करे है पण परका चितन करता नही है अर्थात् अपना स्वभावरूप घर छोडके विभावरूप परघरमें प्रवेश करिके कुशील होता नहीहै वो जीव निश्चय शीलका धारनेवाला है ॥१॥ अब निश्चय व्यवहार करि तपकी वखाण करे है कि जो छठ अठमादि प्रमुख पासखमण मासखमण आदिक अनेक प्रकारका तप जो इसभव परभव पुण्यरूप इंद्रियसुखकी वांछारूप परिणामसे करना वो सब व्यवहारसें द्रव्यतप कहावे तथा यहभव परभव आश्रयी इंद्रिय सुखकी वांछा रहित सर्व प्रकारसें इछाका रोधकरिके एक अपना आत्मा कर्मरूप आवरणसें रहित करनेके अर्थे जो पूर्वोक्त

द्रव्यतप कहा वो सब करनेसें निर्जरारूप जानना ॥ यदुक्त उपाध्याय श्री यशोविजयपादै ॥ गाथा ॥ इच्छा रोधे सवरी परीणति समता जोगें ॥ तप तेही ज आतमा वर्ते निजगुण भोगे ॥१॥ यह भावतप निश्चयनयसें जानना ॥ ३ ॥ अब निश्चय व्यवहार करि भावकी लक्षखाण कहे है ॥ ऋजुसूत्रनयके मतसें दान शील तप विनय वैय्यावच्चरूप जो जीवका परिणामका तल्लीनपणा वो शुभ भाव जानना अरु क्रोध मान माया लोभ विषय कषाय निद्रा विकथारूप जीवका परिणामका तल्लीन पणा वो अशुभ भाव जानना अैसी रीतसें शुभा शुभ द्रव्यसे भाव वो [illegible] ॥नना॥ तथा शब्द अरु सम[illegible]

नाव कहावे ॥ इति द्विचत्वारिंशत्तम प्रश्नोत्तरं संपूर्णम् ॥४२॥२॥

---

प्रश्न ॥४३॥ नवतत्वमे ॥३॥ आदरने योग्य ॥३॥ छाडनेयोग्य ॥३॥ जाणनेयोग्य जिसमे पुण्य जानने योग्य कहा, आदरने योग्य कहा नही और सूत्रमे तो पुण्यके ॥४२॥ भेद कहे (यत्नाव.) मूलसूत्रोत्तराध्ययने वेयावच्चेणंभते तित्थयर नाम कम्मनिबंधई इति॥ औरभी वहुत ठेकाणे पुन्यकु आदरणा कहा तिसका समाधान करणा ॥४३॥

उत्तर ॥ नवतत्वमे जैसे जीव अजीव जानने योग्य है तैसें पुण्य संवर निर्जरा और मोक्ष ये चार तत्व आदरने योग्य भी कहा है तथा पाप आश्रव अरू बंध यह तीन तत्व तो सर्वथा सर्वकु त्याग करने योग्यज है ॥ उक्तंच ॥ हेयाबंधाऽसव पावा जीवा अजीव हुंतिविन्नेया सवर निज्झरमुक्खो

व्याधि जन्म जरा मरणं शोक पीड़ा विषय कषाय निद्रा ममता मूर्छा अज्ञान मिथ्यात्व अव्रत इ त्यादिक अनेक मोहराजाका सुभट विघ्न करने वाले हैं वास्ते तहा पुण्यरूप वोलावा जीवके गवका सहायकारी होय तो जीव निर्विघ्नपणे मोक्ष नगर पहोचे इस वास्ते पुण्य व्यवहारनयके मतसें आदरने योग्य है अर्थात् समकिती जीव हे सो पुण्यकु वोलावारूप जानते है पण अंतरंग निश्च यमें आत्माका गुणरूप पुन्यकुं नहीं जानते जेसें कोई नगर जाना होय अरू रस्तेमे भय बहुत होय तब रस्तेमें वोलावा लेना चाहिये क्योंकि वोलावालिये विना निर्विघ्नसें पहोचना होय नहीं अरू जब वांछितपुर नगरकुं पहुचे तब वोलावाकुं शीख दे इस दृष्टांतसें इहां जीवके मोक्षनगरकुं जाना है अरु रस्तेमे मोहराजाका भय बहुत है तिस वास्ते पुण्यरूप वोलावा सखा गवका होय

पुणहुंतिठवाणए ॥१॥ तथा कोई नवतत्वमे जा
नने योग्य पुण्य कहा वो तो उक्लुरु पुणपावा॥
इत्यादि जैनसिध्धांतोके वचनसें नय अपेक्षासें
कहाहै क्योकि पुण्य तत्व व्यवहारनये करिके
श्रावककु ग्रहण करने योग्य है तथा पुन्यकी करणी
आदरने योग्य है अरू निश्चयनयसें पुण्य गंमने
योग्य है अरू कालदी प्रमुख दानके पुएन जानने
योग्य है तैसेही मुनिके नी पुएनकी करणी तो
आदरने योग्य है अरू पुण्यका बंधकी वांछा
गमने योग्य है तथा उत्सर्गसें तो पुण्य मुनिकों
त्यागन करणे योग्य है अरू अपवादसे ग्रहण
करणे योग्य है औसेही उत्तराध्ययनादि मूलसूत्र
तथा और सूत्रोमेंनी पुण्य आदरने योग्य कहा
है सो वेयावञ्च प्रमुख पुन्यकी करणी आश्री
तथा व्यवहारनय आश्री कहा है क्योंकि मोक्ष
नगर जाते औसे क्रोध मान माया लोन आदि

उत्तर ॥ पंचमुंम्ह पुरुष तो श्री ठाणांगजी
मे कहा है श्री अनुयोगद्वारका मूल पाठमे तो
नवमुखका मनुष्य कहा है पण नवमुंम्हाका मनुष्य
कहा नही है ॥ तथाच तत्पाठ ॥ सेकिंतं आयंगुले
२ जेण जयामणुस्साभवइ तेसिणं तयाअप्पणो
अंगुलेण डुवालस अंगुलाईमुहं नवमुह पुरिसे
पमाणजुत्तेभवई ॥ व्याख्या ॥ आत्मनोंगुलमा
त्मागुल अतएवाह जेणमित्यादि येभरतादयः
प्रमाणयुक्ता यदाभवंति तेषांतदा स्वकीयमंगुलमा
त्मागुलमुच्यते । इतिशेष इदंचपुरुषाणां काला
दिभेदेनानवस्थितमानत्वादनियतप्रमाणं दृष्टव्यं
अनेनैवात्मांगुलेन पुरुषाणां प्रमाणयुक्ततादिनि
र्णयं कुर्वन्नाह अप्पाणो अंगुलेणं डुवालसे इत्यादि
यद्यस्यात्मीयमंगुलं तेनात्मनोंगुलेन द्वादशांगुला
नि मुखंप्रमाणयुक्तं भवत्यनेनच मुखप्रमाणेन
नवमुखानि सर्वोपिपुरुष प्रमाणयुक्तोभवति प्रत्ये

तो निर्विघ्नपणे जीव मोक्षनगरकु पहुचे तातें व्यवहारसें तो पुण्य आदरने योग्य है और निश्चयनये करिके पुण्य शुभ कर्म प्रकृतीरूप है अरु कर्म है सो जीवके मोक्ष मार्गके विषे विघ्न करता है इस वास्ते शुभाशुभ विकाररूप जो वेदनीय कर्म निश्चयनयसें छाडने योग्य है वास्ते जैन सिद्धांतोमे नय अपेक्षासें पुण्य आदरने योग्य छाडने योग्य तथा जानने योग्य तीनु प्रकारसें कहा है सो यथायोग्य जिनराजके वचनमें निश्चय अरु व्यवहार दोनु नय प्रमाण है इन दोनुमेसें एक भी नय उत्थापे तिसका वचन अप्रमाण जानना ॥इति त्रिचत्वारिंशत्तम प्रश्नोत्तर सपूर्णम् ४३

---

प्रश्न ॥४४॥ अनुयोगद्वार सूत्रके मूल पाठमे प्रामाणिक मनुष्य नवमुमाका कहा, सो ये प्रमाण कैसें? यहां ॥ए॥ द्वारकी अपेक्षा लेणी नहीं ॥४४॥

उत्तर ॥ पंचमुह पुरुष तो श्री ठाणांगजी
मे कहा है श्री अनुयोगद्वारका मूल पाठमे तो
नवमुखका मनुष्य कहा है पण नवमुखका मनुष्य
कहा नही है ॥ तथाच तत्पाठः ॥ सेकिंतं आयंगुले
२ जेण जयामणुस्साजवइ तेसिणं तयाअप्पणो
अंगुलेण डुवालस अंगुलाईमुह नवमुह पुरिसे
पमाणजुत्तेजवई ॥ व्याख्या ॥ आत्मनोंगुलमा
त्मांगुल अतएवाह जेणमित्यादि येनरतादयः
प्रमाणयुक्ता यदाजवंति तेषातदा स्वकीयमंगुलमा
त्मांगुलमुच्यते । इतिशेष. इदंचपुरुषाणां काला
दिभेदेनानवस्थितमानत्वादनियतप्रमाणं द्रष्टव्यं
यत्तेनैवात्मागुलेन पुरुषाणां प्रमाणयुक्तादिनि
र्णय कुर्वन्नाह अप्पाणो अंगुलेणं डुवालसे इत्यादि
यद्यस्यात्मीयमंगुलं तेनात्मनोंगुलेन द्वादशांगुला
नि मुखप्रमाणयुक्त जवत्यनेनच मुखप्रमाणेन
नवमुखानि सर्वोपिपुरुषः प्रमाणयुक्तोनवति प्रत्ये

कंद्वादशागुलैर्नवभिर्मुखैरष्टोत्तरशतमंगुलानां संप
द्यते तत श्चैतावदुच्चयः पुरुप. प्रमाणयुक्तोभ
वतीति परमार्थः॥ भावार्थः आत्म नाम अपना र्थ
गुल वो आत्मागुल कहावे वोही है जो भरत आदि
प्रमाणयुक्त पुरुष जब होय तब तिनोंका आत्म
अगुल वो आत्मागुल कहावे यह प्रमाण पुरुषोंका
कालादि भेद करके अनवस्थित मानपणातैं
अनियत प्रमाण जानना इस आत्मागुप करिके
पुरुषोंका प्रमाण युक्तादि निर्णय करते हुये सूत्र
कार कहे हैं जो जिसीका आत्मागुल तिस आ
त्मागुल करिके बारा अंगुल मुख प्रमाण युक्त
होय इस मुख परिमाण करिके नव मुख सव पुरुष
परिमाण युक्त होय अरू प्रत्येक बारा अंगुल नव
मुख करी एकसो आठ अंगुलके मान पुरुप जवा
प्रमाण युक्त होय यह परमार्थ है ऐसे आत्मां
गुलके नव मुख परिमाणका पुरुष जैनसिद्धांतोमे

कहा है सो उपचारसें नंव मुखका मनुष्य कहाता है इति चतुश्चत्वारिंशत्तम प्रश्नोत्तरं संपूर्णम् ४४॥

---

प्रश्न ॥४५॥ मंमकमे गंमक कितने? और गमकमे मंमक कितने? ये प्रश्न अच्छा है ॥४५॥ ये पन्नवणा तथा जीवाभिगम सूत्रमे है

उत्तर ॥ ये प्रश्न अच्छा है तो इसका उत्तर भी स्वच्छ है कि पन्नवणा तथा जीवाभिगमजीमे मंमकमे गमक पणपदेमे हे सो असंख्याते है और गमकमे मंमक एक तिर्यंचका है औसा पन्नवणा तथा श्री जीवाभिगमजी सूत्रके अभिप्रायसें उत्तर दे॥ इति पंचचत्वारिंशत्तम प्रश्नोत्तरं संपूर्णम्४५

---

प्रश्न ॥४६॥ जैन आगममे साधुकुं मुहपत्ती रखणी कही सो प्रथम तो मुहपत्ती शब्दका अर्थ क्या?॥१॥ द्विलंबी चोमी कितनी राखे?॥२॥ दृ०

मुख्य कितने पुरूकी रखनी? श्वार पमसें जादा कमती रखणी नहीं जिसका कारण क्या? इच०॥ मुखे कितनी वखत रखणी ॥४॥ पच० द्वाविश ती तीर्थंकरके वारे कैसें रगकी रखतेथे?॥५॥ पष्ठ० ॥ कितने कारणसें मुखें रखणी ॥६॥ सत० तीर्थ कर वा जिनकल्पी मुहपत्ती रखेके नही?॥७॥ अष्ट० श्रावककू मुहपत्ती रखणी कोनसे सूत्रमे कही?॥८॥ नव० ॥ श्री रत्नकुजरका सोलमा शतकका दूस रा उद्देशाके तीसरा प्रश्नमे एसा कहा है कि शक्रेद्र वयामे मुखे वोले तो सावद्य भाषा कही लव मुखके वस्त्र दिये निरवद्य भाषा होय यह वात किम रीतसें? ॥९॥ ये नव प्रश्नोका उत्तर पचागीसे खुलासा कहणा ॥४६॥

उत्तर ॥ संस्कृत मुखानंतक शब्दकों प्राकृतमे मुहाणतग और भाषामें मुहपत्ती कहाता है इस्का अर्थ यह है कि मुखका आनंतक कहते

दशांश वस्त्रादि पदार्थ वो मुहपत्ति कहावे ॥१॥
तथा मुखपत्ती संबंधी चरमीका परिमाण चतुर्दश
पूर्वधर श्रीभद्रबाहुस्वामी कृत उघनिर्युक्तिमे
ऐसे कहा है (तथा च तत्पाठ.) ॥ इदानीं मुख
वस्त्रिका प्रमाणं प्रतिपादनायाह चउरंगुलं विहत्थी
एयंमुहणतगस्सउपमाण विइयंमुहप्पमाण गणण
पमाणेणइक्केक्क ॥२४॥ चत्वार्यंगुलानि वितस्तिश्चे
ति एतच्चतुरस्र मुखानतकस्यप्रमाणमथवा इदद्वि
तीयं प्रमाणं यदुतमुखप्रमाणं कर्तव्यं मुखणतकं
एतदुक्तनवति वसति प्रमार्जनादौ यथामुखं प्रछा
दने रुकाटिकायांपृष्टतश्च यथा ग्रंथिर्दातुंशक्यते
तथा कर्तव्यश्चस्रंकोण द्वये गृहीत्वा यथा रुका
टिकाया ग्रंथिर्दातु शक्यते तथा कर्तव्य मेतद्वि
तीय गणना प्रमाणेयेन पुन. तदेकैक मेव ग्रहण
इत्युणंतयंनवतिति ॥ व्याख्या ॥ अब मुखवस्त्रि
का प्रमाणका परिमाण प्रतिपादन निर्युक्तिकार

करे है कि चार अगुल और एकवितस्ति अर्थात् एक वेंत अरू चार अंगुल यह चतुरस्त्र अर्थात् चोरस मुखवस्त्रिकाका परिमाण जानना अथवा दूसरा आदेशसें मतांतर परिमाण मुखानतक मुख प्रमाण निष्पन्न जो बनाना इस विषे ऐसें कहाता है कि वसतिप्रमार्जनादि अर्थात् पोसा लप्रमार्जन करते साधु नासिका तथा मुखमे रज प्रवेश रक्षणके अर्थे और उच्चारभूमिके विषे नाशिकार्थ दोषके परिहारके अर्थे जितना मुख स्तगित होय ऐसा वस्त्रका त्रिकोण करिके गल नाल पीछे सरल भागमे जैसीरीतसें ग्रंथी देनेमे आवे ऐसा प्रमाणकी मुखवस्त्रिका करना इन दो नु प्रमाणमेसें हरेक एक प्रमाणकी मुखपत्ति रखे ऐसी आज्ञा है ॥ २ ॥ और मुखपत्ति कारण बिगर मुख्य आव पुरूकी रखणा इस्का कारण यह है कि मुखादिगंधका रुकावटसे पूज्यादिककी

आशातना न होय और उष्टपुटसें बादर सत्व जी
वोका रक्षण जी होय ॥ ३ ॥ अरू जितनी वख
त वोलणेका कार्य पमे इतनी वखत मुखपत्ति
मुखढंके बोलणा पण दिन रात मुखपत्ति मुखपे
वंधि हुइ न रखणा क्योंकि पन्नवाणादिक जैन
सिद्धांतोमे खेलेसुवा अर्थात् खेल थूंक जो वस्त्रा
दिक वाह्यपुजनोंके लगनेसे सीत तथा उष्णयो
नीके चौदास्थानक नीतरके जीवोकी उत्पत्ति
होके हानी होती है ताते साधु तथा श्रावकका
प्रथम व्रत खंमन होता है और प्रथम व्रतका
खंडन होनेसें सर्वविरति देशविरतिपणाका नि
श्चयसें नाश होता है तथा मुखवंधालिंग निरिया
वली प्रमुख जैनसिद्धांतोंमे अन्यमतमें दिशा
पोसी तापस मिथ्यादृष्टियोंका लिंग कहा है ता
ते वसति प्रमार्जनादि कारण विगर जो सदा
मुखपे बंध रखते हे वो जैनलिंग बाह्य कुलिंग

जिन आज्ञा उत्थापक जैनसिद्धांतोंके न्यायसें क
हे जाते है ॥ ४ ॥ तथा द्वाविंशति तीर्थंकरोंके
वारे जैन सिद्धातोके न्यायसें पाचुवर्णकी मुखप
त्ति प्रमुख रखणेका संभव है ॥५॥ और मुखपत्ति
रखणेका इतने कारण श्रीउघनिर्युक्ति प्रमुख जैन
सिद्धातोमे कहा है (तथाच तत्पाठ) इदानीं त
त्प्रयोजन प्रतिपादनायाह ॥ संपाइमरयरेणू
पमज्जणठा वयति मुहपोतीनासच मुहंच वधई
ताए वसहिपमज्जतो ॥३५॥ व्याख्या ॥ संपातिम
सत्वरक्षणार्थ जल्पद्भिर्मुखेदीयते तथारज स
चित्तपृथिवीकाय तत्प्रमार्ज्जनार्थं मुखवस्त्रिका
गृह्यते तथा रेणु प्रमार्ज्जनार्थं मुखवस्त्रिका ग्रहणं
प्रतिपादयति पूर्वर्षय तथा नाशिका मुखंच वध्ना
ति तयामुखवस्त्रिकया वसतिंप्रमार्जयेत येनमुखा
दौ रजो न प्रविशतीति ॥ भाषा ॥ अब मुखवस्त्रि
का रखनेका, प्रयोजन कहे है कि संपातिम जीव

मक्षिका मांस तथा मंशकादि तिनोके रक्षणके अर्थे जावण करते मुखके उपर मुखवस्त्रिका दे वाती हे तथा रज जो सचित्त पृथ्वीकाय तिसका प्रमार्जनके अर्थे तथा रेणु प्रमार्जनके अर्थे मुख वस्त्रिका तीर्थंकरादिकोंने प्रतिपादन करी है तथा वसति उपाश्रयकुं प्रमार्जते उते साधु नासिका तथा मुखबधन करे अर्थात् आछादन करे हे. तिसकरिके मुखादिकके विषे रेणु प्रवेश करे नही तैसें बाधे ॥ यह पूर्वोक्त इतने कारणसें मुखे मुह पत्ति रक्खे ॥६॥ तथा तीर्थंकर वर्जित स्वयंबुद्ध प्रत्येकबुद्ध जिनकल्पी प्रमुख सब साधुओंके ज घन्यमे जघन्य दो उपधि रजोहरण और मुखप त्तिसें ओठी उपधी होय नही तातें उघनिर्युक्ति प्रमुख जैनसिद्धांतोके न्यायसें स्वयंबुद्ध जिनक ल्पि प्रमुख सब जैनसाधु मुखपत्ति हाथमे रक्खे क्योंकि श्री दशवैकालिक मूलसूत्र प्रमुख जैन

सिद्धांतोमे मुखपत्तिका नामें हत्थग कहके श्री गणधरादिकोंने बतलाया है ॥ तथाच तत्पाठ ॥ गाथा ॥ अणुवित्तुमेहावी पमिछिन्नमिसवुमे हत्थ गपमज्जित्ता तत्थभुजिज्जसजए ॥१॥ व्याख्या ॥ अनुज्ञाय तत्स्वामी मेधावीसाधु प्रतिछन्ने को ष्टकादौ सयुक्त सन् हस्तक मुखवस्त्रिकारूप मादा येतिशप सप्रमृज्य विधिना तेनकायं तत्रभुजीत सयत ॥ यह व्याख्या जैसें दशवैकालिकावचूरि कामे है तैसेही श्री हरिजद्रसूरिकृत् टीकामे जी है इसवास्ते इस पाठते यही संजव होताहै कि जो साधुजी हाथ विषे मुहपत्ति रखते है तिस वास्ते मुखपत्तिका नाम हस्तक कहा है अर्थात् बोलती वखत मुखपें वस्त्र देके बोलणा इस वखत मुखवस्त्रिकाका पर्यायांतर नाम मुहपत्ति कह लाती है अन्यथा हाथमे रहती है इस कालमे नाम हस्तिका कहलाती है इत्यादि

पूर्वोक्त न्यायसे तथा जैनसिद्धांतोके वचनसें वि
शुद्ध तथा अविशुद्ध दोनु प्रकारके जिनकल्पी
मुखपत्ति रखे ऐसा सिद्ध है ॥७॥ तथा सामायक
करनेवाला श्रावककुं चरवला मुहपत्ति प्रमुख ग्रहण
करणा नी सिद्धातानुसार है तैसेही श्री अनुयोग
द्वार सूत्रके विषे कहा है कि लोकोत्तर नाव आ
वश्यकके कर्त्ता जो साधु साधवी श्रावक अरू
श्राविका तिनोका एक आवश्यकमेहीज चित्त
तिसमेहीज मन तिसमेहीज लेश्या तिसमे
हीज अध्यवसाय तिसकाहीज अर्थका उपयोग
तिसकाहीज साधन रखना और कोइ स्थान
कमे मन नही रखना ऐसा हुया थका अन्यका
ल प्रतिक्रमण करे. तहां ॥ तदप्पिय करणे ॥ इस
पदका अर्थ चूर्णिकार ऐसी रीतसें कहे है कि
तिस आवश्यकका साधन जो शरीर चरवला मु
हपत्ति प्रमुख मुखको सादिङ्ज्य जो सव क्रिया

करनेका साधनकु तदर्प्पियंकरण कहना अरु ति
सहीज पदकी व्याख्या श्री हरिभद्रसूरिजी तथा
श्री हेमचन्द्राचार्ये करी हुइ टीकामें भी कहा है
कि तदर्प्पितकरण सो धर्मका सब साधन जैसें
के रजोहरण चरवला मुहपत्ति प्रमुख आवश्य
कके विषे जो उचित व्यापारके कारण स्थापे है
वो सब धर्मके कारण रूप जानने यह सब तद
र्प्पिय करणका अर्थ जानना अछो रीतसें जिस
जिस ठिकाणे जो जो उपगरण चाहिये, वो वो
वहा स्थापन करना अथवा रखना तथा श्री आ
वश्यक चूर्णिके विषे भी सामायक अधिकारमे
कहा है कि जो श्रावक होय वो साधुके पाससें
चरवला कावली मागके लेवे अथवा घरसें लाया
हुवा सथारिया चरवला होय वो लेवे इस वास्ते
श्रावककु कावली मुहपत्ति अरु चरवला लेना प्र
माण है इसका विशेष युक्तिका विस्तार पूज्य श्री

कुलमंमनसूरि प्रणीत सिद्धांत आलावाका वि
चारसंग्रह ग्रंथ है तिस्से जानना. तैसेंही और
भी अनेक ग्रथोकी साख है इस वास्ते सामायि
क करनेके अर्थे चरवला मुहपत्ति सथारिया प्रमु
ख सब ग्रहण करणा ॥ अर्थात् चरवला संथारि
या मुहपत्ति प्रमुख उपगरण श्रावककु अनुयोग
द्वार सूत्राधारसें बहुत सूत्र ग्रंथोमे कहा है ॥८॥
और नवमा प्रश्नमें श्री भगवतीसूत्रका नाम उ
पमीक जयकुंजर तो कदाचित्सनवता है पण
रत्नकुंजर नामसें कोई पूर्वाचार्य वतलाते नही
है ताते श्री विवाहपन्नत्ति सूत्रका सोलमा शत
कके दुसरे उद्देशाके चौथा प्रश्नका उत्तरमे शक्रें
द्र उघाडे मुख बोले तव तो सावद्यभापी कहा
है और मुखपें वस्त्र प्रमुख देके बोले तव निर्वद्य
भापी कहा है ॥ तथाहि तत्पाठ. ॥ सक्केणं भंते दे
विंदे देवराया किं सावज्जं भासं भासइ? अणवज्जं

नास नासइ ? गोयमा ! ॥ सावज्जंपि नासं ना
सइ अणवज्जंपि नास नासइ ॥ से केणठेण भंते ॥
एव वुच्चइ सावज्जंपि जाव अणवज्जंपि नास नास
इ गो० जाहेण सक्के देविंदे देवराया सुहुमकायं अ
णिजूहित्ताणं नासनासइ ताहेण सक्के देविंदे देव
राया सावज्ज नासनासइ जाहेण सक्के देविंदे देव
राया सुहुमकायणिजूहित्ताण नासनासइ ताहेणं
सक्के देविंदे देवराया अणवज्ज नासनासइ से तेण
ठेण जावनासइ ॥व्याख्या॥ सत्याविनापा कथ
चित्भाष्यमाणा सावद्यासनवतीति पुन पृच्छति
सक्केणमित्यादि ॥ सावज्जति ॥ सहावद्येन गर्हित
कर्म्मणेति सावद्या ता ॥ जाहेणति ॥ यदा सूक्ष्म
काय हस्तादिक वस्तु इतिवृद्धा ॥ अन्येत्वाहु
सुहुमकायति ॥ वस्त्र ॥ अनिजूहित्तत्ति ॥ अपोह्या
दत्वा॥हस्तायावृत मुखस्यहि नापमाणस्य जीवसं
रक्षणतोऽनवद्या नापानवति अन्यातु सावद्येति

॥ अर्थ. ॥ सत्यभी नाषा कोइक प्रकारसें बोलणेसे सावद्य संनव होती है इस वास्ते फेर गौतमस्वामी पुछते है कि शक्रेन्द्र देवेंद्र देवराजा (सह अवद्य) सहित कहते गर्हित कर्मसे करिके सावद्य कहावे ऐसी नाषा बोले अथवा (अनवद्य) कहते निरवद्य नाषा बोले? इस प्रश्नका उत्तर नगवत कहते है कि हे गौतम! सावद्यनी नाषा बोले निरवद्य पण नाषा बोले. सो किस अर्थे नगवते यों कहा कि सावद्य नी नाषा बोले और निरवद्य नी नाषा बोले. हे गौतम! जब शक्रेंद्र देवेंद्र देवताका राजा (सूक्ष्मकाय) जो हस्तादिक वस्तु ऐसें वृद्ध आचार्य कहते है अरू और आचार्य (सूक्ष्म काय) जो वस्त्र अर्थ कहते है अर्थात् हस्त वस्त्रादिक मूखपें दिये विना नाषा बोले तब शक्रेंद्र देवराजा जीव संरक्षणका अनावसे सावद्य नाषा बोले तथा जब शक्रेंद्र देवेंद्र देवराजा हस्त

तथा वस्त्रादिक मुखद्वार देके बोले अर्थात् मुख ढाकके बोले तब शक्रेंद्र देवेंद्र देवराजा जीव सर क्षणासें अनवद्य नाषा बोले तिस अर्थे हे गौत मा यावत् नाषा बोले इस पाठमे जो मुख ढक के बोलणेमें निरवद्य नाषा कही सो सत्यनाषा जीवसरक्षण आश्रयसें कही है अन्यथा मुख ढकके बेद नेदकारी असत्य नाषा मुख ढाकके बोले तो नी सावद्य कही जाती है तथा मुख ढ कके बेद नेदकारी असत्य नाषा बोले वो नाषा वचनसें तो सावद्य है पण उष्टपुटादिकके मिल णेसें बादरवायु प्रमुख संपातिम जीवोकी हिंसा होती है सो मुख ढकणेसे बचती है तिस अपे क्षासें काययोग प्रवर्त्तन आश्रित नाषा तो निर वद्य कही जाती है अरू वचन सावद्य कहा ज ता है ऐसें नी कोई कहते है सो नी संनावित है तत्वंतु बहुश्रुतनिरीहगीतार्थाविदंति ॥ इति

षट्चत्वारिंशत्तम प्रश्नोत्तरं संपूर्णम् ॥४६॥

---

प्रश्न–॥ ४७ ॥ दीपकका उद्योत होवे जिस वखत क्या चीज बलती है? क्या दीवा बलता है कि बत्ती बलती है? वा तेल बलता है?॥ ॥ यत्पाठ ॥ पईवस्सणं जिआयमाणस्स भंते किं जियाय‍ई? ॥ इत्यादि ॥ ४७ ॥

उत्तर–श्री भगवतीसूत्र शतक आठमे उद्देशा उठामें ऐसें कहा है ॥ तत्पाठ ॥ पईवस्सण भंते। ज्झियायमाणस्स किंपदीवेज्झियाइ लठीज्झियाइ वत्तीज्झियाइ तेल्लेज्झियाइ पदीवचपएज्झियाइ जोइज्झियाइ ॥ गो० ॥ नोपदिवेज्झियाइ जावनोपदीवचंपएज्झियाइ जोइज्झियाइ अगारस्सणं भंते। ज्झियायमाणस्स किं अगारेज्झियाइ कुड्डाज्झियाइ कम्रणाज्झियाइ धारणाज्झियाइ बलहरणेज्झियाइ वंसाज्झियाइ मल्लाज्झियाइ व

गाज्किरयाइ छित्तराज्किरयाइ डाणेज्किरयाइ जोइ ज्किरयाइ गोयमा नोअगारेज्किरयाइ नोकुमाज्कि याइ जावनोडाणाज्किरयाइ जोइज्किरयाइ ॥ व्या ख्या ॥ पदीवस्सेत्यादि ज्किरयायमाणस्सत्ति घ्या यतो घ्याय मानस्य वा ज्वलतइत्यर्थ पदीवेत्ति ॥ प्रदीपो दीपयष्ट्यादि समुदायः ॥ ज्किरयाइत्ति ॥ घ्मायति घ्मायतेवा ज्वलति ॥ लट्ठीत्ति ॥ दीप यष्टि ॥वत्तीत्ति ॥ दशा ॥ दीवचपणत्ति ॥ दीपस्य गनक ॥ जोइत्ति ॥ अग्निः ॥ ज्वलनप्रस्तावादिदमा ह ॥ अगारस्सणमित्यादि ॥ इहचागारं कुटीगृहं कुड्डत्ति । भित्तय । कमणत्ति ॥ त्रट्टिका ॥धारणत्ति॥ वलहरणाधारजूतेस्थूणे ॥ वलहरणत्ति ॥ धारण योरुपरिवर्त्तितिर्यगायतकाष्ठ मोन्नइतियत्प्रसिद्ध ॥ वंसत्ति वंशाश्छित्वराधारभूता ॥मल्लत्ति ॥ मल्ला कु ड्यावष्टम्भस्थाणावो वलहरणाश्रितानिवाछित्वराधा रजूतानिकर्ध्वायतानिकाष्ठानि॥वग्गत्ति॥वल्कावंशा

दि बन्धनभूता वटादित्वक् ॥ छित्तरत्ति ॥ छित्वराणि वशादिमयानिछादनाधार भूतानि किलिञानि ॥ ढाणेत्ति ॥ ढादन दर्भादिमय पटलमिति ॥अर्थ ॥ प्रदीप जो दीपक बलता है नगवन्के प्रदीप जो यष्टयादि समुदाय अर्थात् वत्ती प्रमुखका समूह बलते है अथवा वत्ती बलती है अथवा तेल बल ता है अथवा दीवाका ढाकणा बलता है अथवा अग्नि बलती है इस प्रश्नका उत्तर नगवत कहे है कि हे गौतम नही प्रदीप बलता है यावत् दीवा का ढाकणा नी नही बलता है लेकिन् जोति जो अग्नी बलती है तथा आगार जो कुटीगृह प्रमुख हे भगवन् बलता हुवा क्या घरका उप्पर बले है वा नीति बले है अथवा घरकी त्राटी बले है वा बलहरण आधार भूत थूणी बले है अथवा दोनू थू णीके उपर त्रीछी लंबी लकडी जो मोन,कहावे सो बले है वाछित्वर आधार भूत है सो बले है अथवा

कुटीअवष्टभन जो थंभे प्रमुख वले है तथा मुक्क नाली वशग्रयन भूत जो त्वचा वले है छित्वर व शादिनयी छादनागार भूत जो किलिञ्ज वले है अ थवाछादन दर्भादिमयपटल जो छाजा वो वले है तथा ज्योति जो अग्नि वो वले है इस प्रश्नका उत्तर भगवत कहे हे कि हे गोतम कुटी छप्पर घर वले नही ओर भीत भी वले नही यावत् छादन द र्भादिमयपटल भी वले नही किंतु ज्योति अर्थात् अग्नि वले यह अग्निका वलना कहना निश्चयन यसें हे अन्यथा व्यवहार नयके वचनसें तो दीप यष्टि अथवा गृहादिक सब वलते है ऐसा कहा जाता है ॥इति सप्तचत्वारिंशत्तमप्रश्नोत्तरसंपूर्णम्॥४७॥

---

प्रश्न– ॥ ४८ ॥ चतुष्पद तिर्यंचके विषे तुर ग दोडे जिस वखत उदरमे क्या बोलता है?॥ य त्पाठ ॥ आसस्सण भंते धावमाणस्स किं खुखु ह्रो

ति करेइ ? ॥ इति ज्ञेयम् ॥ ४८ ॥

उत्तर–श्री भगवती सूत्रके दशमशतक तृतीय उद्देशकमे इस प्रश्नका उत्तर ऐसे कहा है ॥ तथाच तत्पाठ ॥ आसस्सणभंते ॥ धावमाणस्स किखुख्खुतिकरेइ ॥ गोयमा॥ आसस्सणं धावमाणस्स हिययस्सय जगयस्सय अतराए तत्थणंकक्कडएनाम वाएसमुछिए जेणं आसस्सधावमाणस्स खुख्खुत्तिकरेइ ॥ व्याख्या ॥ आसस्सेत्यादि अश्वस्यनदंत ॥ धावत ॥ किखुखुइतिकरोतिन्नवति ॥ गौतम ॥ अश्वस्य धावत. हिययस्सयजगयस्सयत्ति ॥ हृदयस्ययकृतस्य दक्षिणकुक्षिगतोदरावयवविशेषस्यान्तरान्तरालेऽत्रकर्कटको नामवायु.सम्मूर्च्छतियेनाश्वस्यधावत. खुख्खुवइति करोति भवतीति ॥ अर्थ ॥ घोमेके णंवाक्यालंकारे हे जगवन् दोडतेकु क्यों खुख्खु ऐसा शब्द होय? इति प्रश्नउत्तरः हे गौतम! घोडाके दोडताके

करि लिखणा॥ ५० ॥

उत्तर—मदबुद्धि जीव हे सो जीव और शरीरकु एक करि जानते है, पण भेद जानते नहीं है॥ और जिसने समकित पाया है तिस का हृदयमे जम अरू चेतनका भिन्न२ ज्ञान हुवा है अर्थात् आत्मीय अरू पौद्गलिक वस्तुकु भिन्न भिन्न जाने वो भेद विज्ञान कहाता है तिसका स्वरूप किंचित् लिखते है॥ आत्मा द्रव्य अनतचतुष्टयमयी तिसके ज्ञान दर्शनादिक अनंत गुण और अगुरुलघुपर्याय यह आत्मके द्रव्य गुणपर्याय और द्रव्यमे नहीं है तथा आत्म स्वभावमें आत्मा एक हे और सब पर स्वभाव आत्माका एक भी नहीं है आत्मा शास्वत है अरू ज्ञान दर्शन सहीत हे और धन कुटुवादिक आत्मस्वरूपसें सब बाह्यवस्तु अलग हे वो स ब संयोगसें मिली हे अरू वियोगसें जायगी ि

समे आत्माका क्या विगाड होनेका है? तन धन कुटुंबादिकका मिलाप तिस्मे जीव मुंझा हुवा दुःखकी परंपरा प्रति पामता हे यह शरीरादि पुत्र कलत्र परिवार प्रमुख सब संयोगी वस्तु आत्मा का स्वरूपसे जूदी हे आत्मा चेतन हे अरु पुद्गलका स्वभाव अचेतन हे आत्मा अरूपी है अरू पुद्गल रुपी हे आत्माका ज्ञानादिक चेतनालक्षण स्वभाव है अरु पुद्गलका जड स्वभाव है आत्मा अमूर्ति है यह पुद्गल मूर्ति है आत्मा स्वभाविक हे यह पुद्गल विभाविक है आत्मा शुचि पवित्र है यह पुद्गल अपवित्र है आत्मा शाश्वत स्वभाव है अरू यह पुद्गलिक वस्तु जो आत्माकुं मिलि हे वो सब अशाश्वती है आत्मा ज्ञानादि रूप है इस पुद्गलका पूर्ण गलन सरूप हे और आत्मा कभी स्वरूपसें चले नही ऐसा अचलीत स्वभाव है अरू पुद्गलका चलित स्वभाव है आ

त्माका ज्ञान दर्शन चारित्रमयं स्वरूप है अरु पु
द्गल वर्ण गधादिरूप है आत्मा वर्ण गधादिसें र
हित है अरु पुद्गल वर्ण गधादि सहित है आत्मा
शुद्ध ज्ञानानंदी है निर्विकल्प अर्थात् सर्व विकल्प
रहित आत्माका स्वरूप पुद्गलसे भिन्न है तथा
आत्मा देहातित अर्थात् यह देहरूप जो शरीर
तिससे रहित है अज्ञान राग द्वेष रूप जो आश्रव
सो आत्माका स्वरूप नही आत्मा इनसे न्यारा
आत्माका अनत ज्ञानमय अनंत दर्शनमय
अनत चारित्रमय अनंत वीर्यमय औसा स्वरूप है
और शुद्ध कर्ममल रहित है आत्मा अविनासी
है अर्थात् आत्माका कोइ कालमे नाश नहीं आ
त्मा जरासें रहित अजर है आत्मा अनादि अर्था
त् आत्माकी आदि नहीं आत्मा अनत अर्थात्
आत्माका अत कोइ कालमे नहि आत्मा अक्ष
य है अर्थात् आत्माका कोइ कालमे क्षय नहि

और नी आत्मा अंक्षर है अर्थात् आत्मा कोई
कालमे खरे नहि आत्मा अचल है अर्थात् आत्मा
कोई कालमे स्वरूपसे चले नहि आत्मा अकल
है अर्थात् आत्माका स्वरूप कोइसें कल्प्या जाय
नहि आत्मा अचल है अर्थात् आत्मा कर्मरूप
मलसे रहित है आत्मा अगम्य है अर्थात् आत्मा
की कोईकुं गम नहि आत्मा अनामी है अर्थात
आत्मा नाम रहित है आत्मा स्वनावि है अ
र्थात् आत्मा विज्ञावदशाकारूप रहित है आत्मा
अकर्मी है अर्थात् कर्मरूप उपाधि रहित है
आत्मा अवधक है अर्थात् आत्मा कर्मरूप बं
धनसें रहित आत्माका खेल अलग है आत्मा
अएदयी है अर्थात् आत्मा उदयज्ञावसें रहित
है आत्मा मन वचन कायाका योगसें जिन्न है
अर्थात् अयोगी है आत्मा शुजाशुज विज्ञावदशा
का जोगसें रहित अजोगी है तथा कर्मरूप रोगसें र

हित अरोगी है और आत्मा कोईका भेदा भेदाय न हि ताते अभेदी है आत्मा अवेदी है अर्थात् आ त्मा पुरुष स्त्री नपुंसक लक्षण तीन भेद रहित है अथवा आत्मा कोईका छेदा छेदाय नहि ताते अछेदी है आत्मा आत्मस्वरूप रमणमें खेद पावे नहि इस वास्ते अखेदी है आत्माका कोई सखा भूत नहि वास्ते असखाइ है आत्मा आत्माका पराक्रम करीके सहित है पण आत्मा अपणी पर णति छोड़ परपरणतिमे बंधाया हुवा जब पीछा अ पणी परणतिमे परणमेगा तब छूटेगा परतु आत्माकुं और कोई बाधने छोड़ने समर्थ नहि औरभी आत्मा लेश्या रहित अलेशी है अर्थात् लेश्यासे अलग " लेश्याकारूप तो पुद्गल है अरु आत्माकारूप ज्ञानानद है आत्मा अशरीरी कहते शरीररूप जड़सें रहित शुद्ध चिदानद पूर्णब्रह्म है आत्मा भाषारूप पुद्गल द्रव्यसें रहित अभाषी पूर्ण देव है

अरु जापा हे सो पुद्गल है आत्मा चार आहार
रूप पुद्गलका जोगसें रहित अणाहारी अपना
पर्यायरूप जोगका विलासी है तथा आत्मा वाधा
पीमारूप दुःखसें रहित अनंत अव्यावाध सुख
का विलासी है आत्माका स्वरूप कोई द्रव्य अ
वगाह शके नहि वास्ते अनवगाही आत्माका स्व
रूप है आत्मा अगुरु लघु अर्थात् मोटा नहि अ
रू गेटाजी नहि और जारीजी नहि अरू हल
काजी नहि ऐसा है फेरजी आत्मा परपरि
णामसे रहित न्यारा अपरिणामी है तथा
आत्मा इंद्रियरूप विकारसे न्यारा अनें
द्रिय है अथवा आत्मा दश प्राणरूप पुद्गलसें र
हित आत्माका खेल अलग हे ताते अप्राणी है
औरजी आत्मा हे सो अयोनि कहेते चोरासी
लाख जीवायोनीरूप परिभ्रमणपणासे रहित
निश्चय देव है तैसेही आत्मा असंसारी अर्था

त् चार गतिरूप ससारसें रहित पूर्ण आत्मारा
मी है ऐसेही आत्मा जन्म जरा मरणरूप दुःख
सें रहित अमर है फेरभी आत्मा अपर कहते
सब परपरासे रहित जूदा खेलवाला है पुनरपि
आत्मा अव्यापी कहते विनाशरूप जमपणासें
रहित महा स्वरूपमे सदाकाल व्याप रहा है फिर
भी आत्मा अनास्ति अर्थात् आत्माका कोई का
लमे नास्तिपणा नहि आत्मा आत्माका स्वद्रव्या
दिकसे करीके सदाकाल अस्तीपणे वर्ते है तथा
आत्मा अकप अर्थात् कोईका कपाया कंपे नहि
ऐसा अनत वीर्यरूप शक्तिका धणी है अथवा
आत्मा अविरोधि है अर्थात् कोइ प्रमाणसे वि
रुद्ध नहि सदाकाल निर्लेप कर्मरूप मलसें
रहित जूदा अपना परिणामिक भावमे रहा वर्ते
है फेरभी आत्मा अनाश्रव अर्थात् शुभाशुभ वि
भावदशा रूप आश्रवसें रहित सदा काल जूदा

वर्त्ते है जैसे मंकके संयोगसें स्फाटिकके कलंक लगे पण मूल स्वन्नाव देखे तव तो स्फाटिक शुद्ध निर्मल है तैसे आत्मान्नी अपने स्वन्नावसें निर्लेप रहा वर्त्ते है फेरन्नी आत्माका स्वरूप ठ्मस्तके लखनेमे आवे नहि वास्ते अलख है औ रन्नी आत्मा अशोक अर्थात् जन्म जरा मरण अरू न्नयरूप शोक संतापसें रहित सदाकाल निरोगी अमररूप वर्त्ते है तथा आत्मा अलौकिक अर्था त् लौकिक मार्गसे रहित आत्माका खेल जूदा वर्त्ते है अथवा आत्मा ज्ञानसें करीके लोकालो कका स्वरूप एक समयमें जाननेकु समर्थवान है वास्ते लोकालोक ज्ञायक है तथा आत्मा शुद्ध अर्थात् निर्मल कर्मरूप मलसे रहित है अथवा चिद् कहते ज्ञान अरू आनंद कहते चारित्र तिस करी सहित चिदानंद है ऐसा आत्माका स्वरूप सदाकाल शाश्वत वर्त्ते है और सव पुद्गलिक स्व

ज्ञाव अशाश्वत है ऐसी रीतसें स्वजाति विजाति विवेचन सहित चेतन जमका स्वरूप निन्न निन्न जानना वो नेदविज्ञान कहाता है. औरनी नेद विज्ञानका विशेष स्वरूप देखनेकी इहा होय तो श्रीदेवीचंद्रजी तथा चिदानदजीकृत अध्यात्म गीता तथा पुफ्जगीता प्रमुखसें जानके आत्मःवेय रमण करणा श्रेय है ॥ इति पंचाशत्तमप्रश्नोत्तर सपूर्णम् ॥ ५० ॥

---

प्रश्न –॥५१॥ जीवे जीव आहार, जीव विना जीवे नहि ॥ पन्नि करो विचार, जीवदया किम पालिये ॥१॥ ये प्रश्न वमा नारी है ॥५१॥

उत्तर –यह प्रश्न दृष्टकूट है ताते विचारवंत बुध्दिवानोकु वमा हलका मालुम देता है तथापि किंचित् विचार लिखने है कि कोईक श्रोताने वक्ताकु पूरा के जीवे जीव आहार, जीव विना

जीवे नहि ॥ पंमित करी विचार, जीवदया किम पालिये ॥१॥ इसका उत्तर वक्ताने कहा सो ऐसा श्रवणमें आताहै कि ॥ जीवे जीव आहार, जीव विना जीवे नहि ॥ श्रोता यही विचार, टले जिंताई टालियें ॥ २ ॥ इस उत्तरसें प्रश्नकारका चित्तका समाधि न होनेका अनुमानसे दूसरा चरितार्थ उहा वक्तोक्तिका लिखते है कि ॥ जीवे जीव आ हार, जीव विना जीवे नहि ॥ श्रोता यही विचार, जीवदया इम पालियें ॥ ३ ॥ इस दोहरेमे प्रथम जीव शब्दसें चेतन दूसरा जीव शब्दसें प्राण ग्र हण करनेतें ऐसा अर्थ होता है कि जीव हे सो जीव कहते प्राणका आसमंतात् अर्थात् समस्त प्रकार करीके हार कहतें हरण होता है अर्थात् प्राणका नाश होता है और जीव विना कहते प्राण वगर जीवे नहि कहते जीवका जीवना नहि होता हे ताते हे श्रोताजनो! विचार करीके

जीवदया कहते जीवपें दयालाके इम पालीये कहते ऐसें पालन करोकि जीवोका प्राणका रक्षण होय ॥ १ ॥ औरभी इस दूहाका अन्वयार्थ ऐसा होता है कि जीव है सो आहारसे जीवे कहते जीवता है विना जीवे कहते जिन आजीविका वगर जीव कहते जीव है सो नहि जीवे कहते जीता नहि एसा विचार है श्रोताजनो करीके ऐसे जीवदया प्रतिपालन करो अर्थात् आहारादिक आजीविका देके जीवोंका प्रतिपालना करोगे तो जीवदया धर्म पलेगा ॥ २ ॥ तथा इस दोयकमे अकार प्रश्लेष करे तब ऐसा अर्थ होता है कि जीव है सो अजीव पुद्गलोके आहारसे जीवे कहते जीवता है जीव विना अर्थात् आहार विना जीव जीवे नहि कहते जीव जीवता नहि है ऐसा विचार करीके हे श्रोताजनो! जीवदया पालो अर्थात् जीवके अजीवका आहार होता है पण

जीवोंका आहार नहिं होता है तातें जीवोकी र
क्षा करनेसे जीवदया पलती है ॥ ३ ॥ तथा
जीवतीति जीव अर्थात् जीव्यो जीवे है अरू
जीवेगा वो जीव कहावे और जीनसें जीवे वो
जीव तथा जीवे कहावे अर्थात् जीवे अरू जीव
शब्दसे जीव तथा जीवे नाम आयुष्यका ग्रहण क
रतें ऐसा अर्थ होता है कि जीव जीवे कहते स
कर्मी जीव हे सो आयुष्यसे आ समस्त प्रकार क
रीके हार कहते हरण होता है अर्थात् जीवका
नाश होता है ताते जीव विना कहते आयुष वि
ना जीवे नहि कहते जीव जीवे नहि अर्थात् आ
उखा विगर जीवका जीवणा होना नहि एसा
विचार करीके हे श्रोताजनों! जीवोंका आयुष्यका
रक्षण करीके अर्थात् अकालमे मरते हुये जीवों
कुं बचाके ऐसें जीवदया पालो ॥ ४ ॥ तथा
जीव हे सो जीवे कहते आयुष्यसें आ समस्त

प्रकार करीके हार कहते हारता है अर्थात् सम
य समय दीठ आयुष्य घटनेसें अपना जन्म हार
ता है पण जीव विना कहते चेतना विना अर्था
त् ज्ञान विना जीवे नहि कहते चेतना होती न
हि अर्थात् ज्ञान विना आत्माका चेतना होना
नहि ऐसा विचारके हे श्रोताजनो! ऐसे जीवद
या पालो के जातें आत्मज्ञानकी हानी होय नहि
अर्थात् नावदया सहित द्रव्यदया पालो पण
जीव हे सो जीवका आहार करता है अरू जीव
का नक्षण करे विना जीव जीता नहि सो अब
जीवदया कैसे पाले? ऐसी नास्तिक मतकी श्रद्धा
कु अलग करीके "पढमनाणतऊदया" ॥अर्थात् प्र
थम ज्ञानका अभ्यास करीके श्री जिनाज्ञा स
हित जीवदया धर्मकी प्रतिपालना करोगे तो मो
क्ष नगरका अक्षय अव्याबाध राज्यकु प्राप्त होके
शिवरमणी महाराणीके साथ सादि अनंत सुख

विजसके महा मंगलमाला पदकुं प्राप्त होगे ।ए१।
इति एकपंचाशत्तम प्रश्नोत्तरं सपूर्ण ॥ए१॥

---

॥ अथ प्रश्नोत्तरतरंगवर्गनिगमनदोधकवृत्तः ॥
पटलावदर्से प्रश्न यह, लिखे रूपि रजतचङ ॥
प्रश्न इकावन गर्नित वली, वाण भुजा उमुइन्द ॥१॥
उत्तरदान विनती करे, राजगढे श्री सघ ॥
धनमुनिवर नवि हित दिये, उत्तरदान अनग ॥२॥
प्रश्नामृतप्रश्नोत्तर, तरंग नाम सदेत ॥
नापा रचना ग्रंथ यह, वालवोध कहिंत ॥३॥
धम्मधराउद्धरणकु, वराहसमोराजेइ ॥
सूरिपदकजपरागसम, धन्नविजय मुनिचन्द ॥४॥
सस्कृत प्राकृत चूरणें, नापा चूरणरूप ॥
पद्मनापा मयि ग्रंथका, परिमल लहे कवि भूप॥ए॥
प्रश्न प्रश्नसें होत है, उत्तर उत्तर वुद्ध ॥
स्याद्वाद जिनवानिको, रहस्य लहे सविशुद्ध॥६॥

आगम महोदधि तरनकु, धरी पचामी नाव ॥
पूर्वाचार्यके वचनमे, प्रगट उत्तर सद्भाव ॥७
बाल ख्याल रचना रची, प्रश्नोत्तर सुविचार ॥
न्यून अधिक कछु होय तो,बुध जन लियो सुधार॥८॥
जैनागम विपरीत कछु, उत्तर दान हुवो जेह ॥
संघ साख करी मुझ हुजो, मिच्छाडुक्कड तेह ॥९॥
रजनीपति अरु जिनपति, जबलग धरा जगत ॥
तबजग थिर रहो ग्रंथ यह, पढे सज्जन महंत॥१०॥
मंगलादीनि मंगलमध्यानि मंगलावसानानि शास्त्राणि विद्धपामुपादेयानि निःश्रेयससाधकानि भवतीति ॥

इति श्री सौधर्मतपागच्छालंकार किरीटसम भट्टारक श्रीविजयदेवसूरीश्वर तत्पट्टालंकारहारसम श्री विजयप्रभसूरीश्वर तत्पट्ट प्रभाकरभट्टारक श्रीविजयरत्नसूरीश्वर तत्संतान संततिपट्टप्रभावक पट्टानुपट्ट प्रमोदकुमुदविकासकचंद्र प्रमोदसूरिप

द्प्राग्भार भवितसिद्धांतमहोदयिक्रियाशुद्ध्युपका
रकश्वेतांबराचार्य भट्टारकपूज्य श्री श्री १०८ श्री
विजयराजेंद्रसूरीश्वर विजयमानराज्ये न्याय चक्र
वर्त्तिपदन्यासपरंपरानुगशिष्य सविझ्रपक्षपदधारक
मुनि श्री धनविजय विरचित पदार्थसुधासिंधुतरंग
द्वितीयनाम प्रश्नाम्मृत प्रश्नोत्तरतरंगग्रथे सपादशत
प्रश्न निर्णयोनाम प्रथम वर्ग समाप्त. ॥

| | | | |
|---|---|---|---|
| ९१ | १६ | नवाति | भवति |
| १०७ | ४ | कासकाकणी | कार्म्णी |
| [illegible] | १६ | जैनमाधुक | जैनसाधुयोंभावकके |
| १२३ | ८ | होतोहक्याकी | होताह फ्युकी |
| १४० | ५ | जथ | अथ |
| १४२ | ८ | पमोड | पक्वाड |
| १[illegible] | १२ | कयाँक | थे |
| १८[illegible] | ७ | जगाहत | अगर्हित |
| १८ | ५ | जा | जा |
| २१८ | १[illegible] | धारा | धारी |
| २१९ | ५ | फालशाचायके | फाल्काचायने |
| २२५ | ७ | ४०००० | ४००० |
| २४२ | १४ | चाधादियोगस | वायवादियोगसे |
| २[illegible] | १० | भाप | वाप |
| २६० | १ | भाप | वाप |
| [illegible]६० | ५ | भाप | वाफ |
| २८० | ६ | पल | तुल |
| २[illegible]१ | ७ | पर | उपर |
| २०[illegible] | १८ | पुण्यणसय | सयणपुन्य |
| २१३ | ९ | मुसणतक | मुसाणतक |
| २०३ | १६ | मुगशा सा | मुरकोसा |
| ३२७ | ८ | भगरते | भगवंत |
| ३२९ | ७ | भनवतो | भगवती |
| ३३ | १ | यहे | यह |
| ३४६ | ७ | निचारहे श्रोताजनो | विचार हेश्रोताजनो |
| ३४० | ८ | सहेत | सवेत |
| [illegible]४२ | ९ | वाल्वोधकाँहित | वाल्बोधके हेत |
| ३४२ | १० | राजेंद्र | राजेंद्र |